ॐ

# भक्ति

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥



सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥


सम्पादकः—स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती

माघ सम्वत् १९८४

वार्षिक चन्दा २) एक प्रति का ।)

## भक्ति के नियम।

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना गो रक्षण और उस के लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना। वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना। सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना। राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्वसाधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देनेवाले सहायक होंगे।

५. अश्लील और अपरिचित विज्ञापन नहीं लिए जावेंगे।

६. लेखों को प्रकाशित करना और और घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और विज्ञापन व पत्र सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नामसे होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर का लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

---

## विषय सूची।


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| १. मंगला चरण | १३७ |
| २. भक्ति पथ [ ले० श्री पण्डित किशोरी लाल जी बाजपेयी बांगड़ी | १४० |
| ३. भक्तों के चरित्र [ ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी ] | १४१ |
| ४. सर्वसारोपनिषद् | १४७ |
| ५. गोभक्ति ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी] | १४८ |
| ६. कर्म [ ले० प० रूपराम जी ] | १५२ |
| ७. महात्माओं के वाक्य | १५३ |
| ८. मानव धर्म सार | १५५ |
| ९. ईश विनय [ ले० श्री मुरारी लाल जी "अभय" ] | १६० |
| १०. सदोपदेश | १६१ |
| ११. भजन | १६५ |
| १२. संसार समाचार | १६८ |

ॐ

"कलौतु केवला भक्तिः।"

वार्षिक चन्दा २) एक प्रति का ।)

# भक्ति

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली मासिक पत्रिका।

वर्ष २ } भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, माघ पूर्णिमा सं० १९८४। { अङ्क ५

## ॥ मंगलाचरणम् ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ १ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे समस्त कर्मों के जानने वाले हैं। आप सन्मार्ग द्वारा अपना ऐश्वर्य प्राप्त कराओ और कुटिल पापों को हमसे दूर करो। हम आपके निमित्त अधिकतर नमस्कार विधान करते हैं ॥१

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ २ ॥

वह परमात्मा हमारा बन्धु है, उत्पन्न करने वाला है, वही धारण करने वाला है, वह सम्पूर्ण भुवनों को तथा स्थानों को जानता है। देवता उस नित्यानन्द युक्त स्वर्ग स्थान में मोक्ष को प्राप्त होकर स्वेच्छा पूर्वक विचरते हैं ॥ २ ॥

विश्वे देवानो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण विद्वानों का आधार वैश्वानर अग्नि नामक तथा देव विशेष ऋभु रुद्र इन सब का वाच्य जो ईश है उसकी कृपा से हमारे सम्पूर्ण पाप विजय को प्राप्त हों ॥ ३ ॥

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतो स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ ४ ॥

हे गायो ! प्रकाशमान परमात्मा तुम को अतिश्रेष्ठ कर्म के निमित्त प्राप्त करावे । हे अवध्यगावो ! इन्द्र के निमित्त दुग्ध बढ़ाओ । सन्तान वाली, स्वल्प रोग रहित, प्रबल रोग रहित तुम्हें चोर आदि पापी गण और व्याघ्रादि प्रहार करने को समर्थ न हों । तुम इस यजमान में निरन्तर रहने वाली बहुत प्रकार की होवो और यजमान के पशुओं की रक्षा करो ॥ ४ ॥

देवानां भद्रा सुमति र्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो निवर्त्तताम् ।
देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ ५ ॥

सरलस्वभाव देवताओं की स्वाभाविक कल्याण कारिणी सुमति हमारे प्रति नियुक्त हो, देवताओं का दान भी हम पाने की इच्छा करें और इनकी मित्रता की इच्छा करें । यह देवता हमारी आयु की वृद्धि करें ।

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ६ ॥

हम स्थावर जंगम के स्वामी, बुद्धि के सन्तोष करने वाले रुद्रदेव का रक्षा के निमित्त आह्वान करते हैं। वेदज्ञान की रक्षा करने वाले, पुत्रादिके पालक, अविनाशी, पूषन् देव हमारी वृद्धि और कल्याणके निमित्त हो

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ७ ॥

महत् कीर्तिमान् इन्द्र हमारे निमित्त कल्याण करें, सर्वज्ञ पूषा हमको कल्याण दाता हों, अरिष्टनेमि और गरुड़ हमको कल्याण कारी हों और बृहस्पति हमारे निमित्त कल्याण विधान करें ॥ ७ ॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ ८ ॥

पञ्च ज्ञानेन्द्रिय पञ्च कर्मेन्द्रिय पञ्चतन्मात्रा, पञ्च प्राण, इक्कीसवां जीव, यही इक्कीस सम्पूर्ण रूपों के धारण पोषण कर्ता सर्वत्र गमन करते हैं इन सबका स्वामी परमेश्वर है। वही परमेश्वर हमारे सम्पूर्ण शरीरों को सुरक्षित करे ॥ ८ ॥

शन्नो देवः सविता त्रायमाणः शंनो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नो पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥९॥

रक्षक, सर्वोत्पादक, क्रीड़ादि गुणयुक्त परमैश्वर्य तथा परमेश्वरीय प्रकाशमान प्रातः काल सुखकारी हो सुखोत्पादक हो। कारणों का कारण ईश तथा मेघ यह प्रजा मात्र को सुख दायक हों ॥ ९ ॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शन्नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृनः सुहस्ताः शंनो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १० ॥

सत्यवादी अश्व गौ शोभन हस्त युक्त विद्वान् तथा पूर्वज ये सब हमारी प्रिय वाणी सुन कर सुखदायक हों ॥ १० ॥

अहानि शं भवन्तु नः शꣳरात्रीः प्रतिधीयताम् । शं नः इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रा वरुणा रातहव्या । शं न इन्द्रा पूषणा वाजसातौ शमिन्द्रा सोमा सुविताय शं यो ॥ ११ ॥

सम्पूर्ण दिन हमारे निमित्त कल्याणकारी हों, सम्पूर्ण रात्री कल्याण विधान करें, इन्द्र और अग्नि पालनाओं से हम को सुख रूप हों, इन्द्र और वरुण हमारा कल्याण करें, इन्द्र और पूषा हमको सुखकारी हों और सुखकारी इन्द्र और सोम देवता हमको कल्याण प्रद हों ॥ ११ ॥

# भक्ति-पथ

( ले० श्री पण्डित किशोरी दास जी वाजपेयी गुरुकुल कांगड़ी )

इस मार्ग के अनुभवी और साधन शास्त्र-वेत्ताओं का कहना है कि:-"भक्त्यात्वनन्यया लभ्यो हरिरन्यद् विडम्बनम् ।" भगवान् केवल भक्ति से ही प्राप्त होते हैं और सब तो विडम्बना मात्र है। इसी प्रकार के अगणित वाक्य हमारे धर्म्म, ग्रन्थों में विद्यमान हैं। भारत और श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थ तो इस मार्ग के केन्द्र ही हैं। संसार में इस मार्ग के नाम को भी प्रायः सभी जानते हैं। परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि भक्ति पथ कुसुम से अधिक कोमल और वज्र से भी अधिक कठोर है। इसे असिधारा व्रत ही समझना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है:-

रघुपति-भक्ति करत कठिनाई।
कहत सहज करनी अपार अति,
सो जानै जेहि बनि आई।

यह बात सोलहों आने सत्य है किन्तु साथ ही यह भी समझ लेना चाहिए कि यह बात उस प्रेम-लक्षणा भक्ति की है, जो सब साधनों का अन्तिम साध्य और भगवान् की प्राप्ति का अन्तिम और अव्यर्थ साधन है। साधारण नवधा भक्ति की बात दूसरी है। वह सुविशाल राजपथ है, जिस में होकर छोटे-बड़े सभी बेरोकटोक आ जा सकते हैं। किसी से कुछ पूछने का काम नहीं है। आंख बन्द किए चले जाइए। अभीष्ट स्थान पर पहुंच जाइएगा। जब अभीष्ट स्थान थोड़ी दूर रह जाता है, तो अन्तिम साधन-सीढ़ी वह प्रेमलक्षणा भक्ति प्राप्त होती है। इसके आगे फिर "रसो वै सः" "रसं ह्येव लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति" बस, वह रसमय पदार्थ है।

तो, साधारणतः भक्ति दो प्रकार की है, साधन-रूपा और साध्यरूपा। साधन रूपा भक्ति नव प्रकार की है या यों कहिए कि नव उसके अङ्ग हैं, अर्थात् श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरण-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन। इन में से आत्म-निवेदन का दर्जा बड़ा ऊंचा है। इसी को प्रपत्ति अथवा शरणागति भी कहते हैं। गीता के अन्त में इसी प्रपत्ति का उपदेश है:-

'सर्वधर्म्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'

यही गीता का निचोड़ है। गीता प्रपत्ति या शरणागति का उपदेश करती है।

आत्म-निवेदन में सब कुछ आजाता है। बिना निष्काम कार्म्म किये ज्ञान नहीं होने का और ज्ञान के बिना प्रपत्ति दुर्लभतर पदार्थ है अतः स्मरण रखना चाहिए कि निष्काम कर्म्म, योग और ज्ञान-योग के अनन्तर यह पवित्र और दुर्लभ पदार्थ है। इस बात को आगे चल कर हम विशद करेंगे। इस प्रपत्ति की प्राप्ति हो होजाने पर, भगवान् को आत्मनिवेदन कर देने पर-आन्तर और बाह्य सब कुछ भगवान् के अर्पण कर देने पर वह प्रेम-लक्षणा भक्ति प्राप्त होती है। इसके प्राप्त हो जाने पर फिर कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता है:-"तस्मिन् प्रसन्ने किमिहास्ति दुर्लभम् ?"। कर्म से ज्ञान और ज्ञान से भक्ति, भक्ति में प्रथम साधन-रूपा नवधा और फिर प्रेमलक्षणा, यह क्रम है। साधन, भक्ति में भी क्रम है। पहले श्रवण, तब कीर्तन और फिर

स्मरण आदि होने हैं। पहले मनुष्य किसी वस्तु को सुनता है, उस के रूप और गुणों आदि की बात किसी के द्वारा जानता है। फिर इसी रूप या गुणों का कीर्तन करता है, बार बार मनसा वाचा अभ्यास करता है। ऐसा होने पर वही वह जी में समा जाता है। अनवच्छिन्न रूप से उसी में मन लग जाता है। गंगा के प्रवाह के समान वह स्मरण, सन्तति कभी भी नहीं टूटती। ऐसा होने पर वह उसी पर न्यौछावर हो जाता है। दुनिया की और सब बातें भूल जाती हैं। वह उसी के चरणों पर मुग्ध हो जाता है। इसी क्रम से, नवधा भक्ति के आगे, वह प्रेमलक्षणा भक्ति उपलब्ध होती है, जिसके मिलने पर फिर और कुछ सुख, सुख नहीं रहती। फिर तो अपने प्रियतम को देखता हुआ, "क्वचिद्धसति गायति रौति क्वाऽपि" कभी हंसता है तो कभी गाता है और कभी रोने लगता है। वह प्रेम में विह्वल होकर सब जगह उसी को देखता है। इसी अवस्था को परमहंस अवस्था कहते हैं। शबरी, विदुर-पत्नी और जड़ भरत आदि इसके उत्तम उदाहरण हैं।

भगवन् की यह भक्ति भगवान् की कृपा से ही उपलब्ध होती है और भगवान् तब कृपा करते हैं, जब जीव में अभिमान का लेश न रह कर वह आत्म-निवेदन कर देता है और अर्जुन के समान दीन बन जाता है। भक्ति के आचार्यों का कहना है:-

कृपाऽस्य दैन्यादियुजि प्रजायते,
यया भवेत् प्रेमविशेषलक्षणा।
भक्तिरनन्याधिपतेर्महात्मनः,
साचोत्तमा साधनरूपिकाऽपरा॥

सब ओर से अभिमान के टूटने पर जब साधक दैन्ययुक्त होकर भगवान् की शरण में जाता है, तब भगवान् की उस पर कृपा होती है और उस कृपा का फल है प्रेमलक्षणा भक्ति की प्राप्ति। यही कारण है कि बड़े-बड़े कर्मठ, वेदाध्यायी द्विजाग्रगण्यों को इस भक्ति की प्राप्ति वैसी नहीं हुई, जैसी स्त्रीजनों और दलित वर्ग के साधक जनों को। किसी में जाति का, किसी में विद्या का और किसी में अपनी तपस्या आदि का अभिमान रहता है। जब तक अभिमान की भीषण और बीभत्स दुर्गन्ध मनुष्य के हृदय में वर्तमान रहती है, तबतक उस रसवाहिनी भक्ति मधुकरी का प्रवेश कब सम्भव है?

## भक्ति पथ की विशालता।

भक्ति पथमें संकीर्णता का नाम, निशान नहीं। आंख बन्द किये चले जाइये, अभीष्ट स्थान मिल जायगा। किसी से पूछने-ताछने की भी कोई जरूरत नहीं। बीच में कांटे, कंकड़ों का पता नहीं। सिर छाया है। सभी के लिए गुंजायश है। छोटे-बड़े सब मजे में चले जाते हैं। यहां पूर्ण साम्यवाद है। सब समान हैं। कोई जात-पांत का झगड़ा नहीं। कोई वेद-पाठ का अटकाव नहीं। कुछ कर्म्म, काण्ड की खटखट नहीं और औपनिषद् ज्ञान चूकने की वैसी कुछ जरूरत नहीं। यहां तो जरूरत है शुद्ध हृदय की और उस हृदय में प्रेम संचार की। यहां धोबी, चमार, भंगी और यवन तक का बराबरी का दर्जा है, वह कर्मठ और ज्ञानी द्विज जो इस पथ का पथिक है, किन्तु इस पथ से परिचित नहीं, वह तो इन पवित्र धोबी, चमारों की चरण-रेणु भी नहीं पासकता। हां, यदि

द्विज होकर भी भगवद्भक्ति की उपलब्धि कर सके, तब तो कहना ही क्या है। सोने में सुगन्ध है। जो लक्ष्मीपति होकर लक्ष्मी के अभिमान को छोड़े, उसका छोड़ना है और जो उत्तम कुल में जन्म लेकर भी उस के अभिमान की दुर्गन्ध से बचा रहे वही श्रेष्ठ त्यागी है। इसी बात को भगवान् ने कहा है:-

"स्त्री वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्तिपारां गतिम्।
किं पुनर्ब्राह्मणा पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।।"

कहने का तात्पर्य्य यह कि धनकुल आदि का तारतम्य यहां कुछभी नहीं। यहां तो रसधारा बहती है। उस में जो पड़ा सब एक।

## भारत में भक्ति का उद्गम या प्रचार।

ईसाइयों का कहना है कि भक्ति का प्रचार पहले-पहले ईसाई, धर्म्म में ही हुआ और बाद में इसी धर्म्म से इसे आर्यों के भागवत धर्म्म ने लेकर भारत में इसका प्रचार किया। यह बात बिलकुल गलत है, ठीक वैसी ही, जैसे ईसाई धर्म्म, प्रचारकों की, आर्य-धर्म्म के विषय में घड़ी हुई अन्यान्य बातें। इस विषय का विवेचन लो० तिलक ने अपने गीता-रहस्य में विस्तार पूर्वक किया है। उन्होंने अकाट्य प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया है कि भक्ति का प्रादुर्भाव सब से पहले भारत में ही हुआ और मुख्यातः भागवत धर्म्म ने उसका प्रचार किया।

जो भी हो। हमें इस विषय में अधिक कहने की जरूरत नहीं; अच्छी चीज को सभी अपनाने की कोशिश करते हैं। चाहिए भी यही। रही बात यह कि हमने इस को पहले पाया कि उसने? यह बात हमारे यहां गौण है। इस का विचार करना इतिहासज्ञों का काम है। हमने तो प्रसंग वश इसका जिक्र भर कर दिया है।

## भक्ति मार्ग के मुख्य ग्रन्थ।

यों तो वेदों में ही और और साधनों के साथ भक्ति का भी उपदेश है और इसी प्रकार प्राधान्य से है। पर वेद में सबका भाग है। वे सब विषयों का प्रतिपादन करते हैं। वे केवल भक्ति, मार्ग का ही उपदेश नहीं देते। वे तो सब विद्याओं के मूल उद्गम स्थान हैं। मूल में प्रत्येक धारा छोटी और संक्षिप्त होती है। आगे, फिर वह बढ़ती जाती है। हम कह आये हैं कि कर्म्म से ज्ञान और फिर भक्ति का दर्जा है। यही बात यहां भी आप को मिलेगी।

वेद कर्म्म, ज्ञान और भक्ति, सब कुछ बतलाते हैं। वेदों के ही कर्म्म-काण्ड को विशद करने के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों की बाद में उत्पत्ति हुई। इसके अनंतर ज्ञान, प्रधान उपनिषदों का आविर्भाव हुआ। फिर भक्ति प्रधान ग्रन्थों के प्रणयन का समय आया। मुख्यातः श्रीमद्भागवत, भारत और शाण्डिल्य सूत्र आदि ही प्रधान और मूल भक्ति-ग्रन्थ हैं बहुत सम्भव है, इन से पहले लाखों इस विषय के और-और ग्रन्थ बने हों, क्योंकि एकदम इतने इतने बड़े विशद ग्रन्थ बन जायं और उनके पहले इस विषय के कोई छोटे-मोटे ग्रन्थ न बने हों, यह बात बुद्धि में नहीं आती। अस्तु, तो ये मुख्य ग्रन्थ इस समय उपलब्ध है। लेखक इस बात को मानता है कि भारत और महाभारत में अवश्य ही बाद में बहुत सा प्रक्षेप किया गया है, जो कि अधिकांश में भागवत धर्म्म के या भक्ति-पथ के मूल सिद्धान्तों से एकदम

उलटे हैं। सबसे अधिक दुःख की बात तो यह है कि भक्ति के आधार भगवान श्री कृष्णचन्द्र के चरित्रों पर ही भीषण आक्रमण किया गया है। सम्भव है, भागवत धर्म्म के द्वेषियों ने ही ऐसा किया हो। कुछ भी हो, इन ग्रन्थों में क्षेपक अवश्य मालूम होता है। धर्म्म-प्राण आर्यों को उचित है कि यथासंभव शीघ्र ही इन पवित्र ग्रन्थों का सुचारु रूप से सम्पादन करके इन्हें प्रकाशित करावें, क्योंकि ये ही तो भक्ति के स्तम्भ हैं। और भक्ति वह वस्तु है, जिस से समस्त जगत् त्रितिताप से छुटकारा पाकर अद्वय आनन्द का उपभोग कर सकता है।

---

# भक्तों के चरित्र।

## श्री रामानुजाचार्य।

भगवान श्री कृष्ण जी गीता के चौथे अध्याय में अर्जुन को उपदेश देते हुए बतलाते हैं कि जब जब धर्म का ह्रास होता है तब तब साधुओं की रक्षा के हेतु, पापों को नष्ट करके धर्म की रक्षा के निमित्त युग युग में अवतार धारण करता हूं। इसी से इस संसार के उद्धार के निमित्त भगवान ने चौबीस अवतार धारण किये हैं। जिनको कवि ने एक छप्पय में इस प्रकार वर्णन किया है:-

**जय जय मीन, वराह, कमठ, नरहरि, बलि वामन,**
**परशुराम, रघुवीर, कृष्ण कीरति जग पावन।**
**बुद्ध, कलंकी, व्यास, पृथु, हरि हंस मन्वन्तर,**
**यज्ञ ऋषभ हय ग्रीव ध्रुव वरदेन धन्वन्तर।**
**बदरीपति दत्त कपिलदेव सनकादिक करुणा करो,**
**चौबीस रूप लीला रुचिर अग्रराम उर पग धरो॥**

इसी प्रकार इस कली काल में अपार संसार रूपीसमुद्र में गड़मगाती हुई भक्ति रूपी नव्याको सुदृढ़ करने के हेतु वल्ली रूपी चार आचार्यों ने चार सम्प्रदायों को स्थापित किया। सनकादिक सम्प्रदाय जिसके आचार्य निम्बार्क स्वामी हैं, श्रीसम्प्रदाय जिस के आचार्य रामानुजाचार्य हैं, शिव सम्प्रदाय जिसके आचार्य विष्णु स्वामी हैं और चौथे ब्रह्म सम्प्रदाय जिसके आचार्य माधवाचार्य हैं। संसार समुद्र से पार उतारने के निमित्त चारों सम्प्रदाय बराबर ही हैं। सब सम्प्रदाय वालों ने भगवत् की अद्वैतता एक ही प्रकार की लिखी है। सब सम्प्रदाय वाले मानते हैं कि भगवान् के अतिरिक्त संसार से छुटकारा पाने का और कोई मार्ग नहीं है। भेद केवल थोड़ा माया और जीव के निर्णय में, तिलक धारण करने में तथा मुद्रा में है। श्री सम्प्रदाय वाले ईश्वर को चिदचिद्विशिष्टाद्वैत मानते हैं। अर्थात् माया और जीव भी उसी अद्वैत से मिले हुए हैं और नित्य हैं। निम्बार्क स्वामी द्वैताद्वैत, ब्रह्म सम्प्रदाय वाले द्वैत सिद्धान्त और विष्णु सम्प्रदाय वाले शुद्ध अद्वैत मानते हैं। परन्तु हम इन झगड़ों में न पड़ कर इन चारों सम्प्रदायों में रामानुजाचार्य जी श्री सम्प्रदाय

के प्रवर्तक हुए हैं और जिनके तप के प्रभाव से कोटान कोटि महापापी और पातकी संसार से तर गये हैं उनकी पवित्र गथा के ही विषय में भक्ति के पाठकों के लाभार्थ कुछ लिखेंगे।

रामानुजाचार्य का जन्म अब से लगभग आठसौ वर्ष पूर्व हुवा था। इनके पिता का नाम केशवयज्वा और माता का नाम कन्तिमती था। इनके पिता मद्रास प्रांत में कांचीपुरी के निकट भगवन् नामक नगरी के रहने वाले थे। इनके पिता ने इनको संस्कृत अध्यायनार्थ श्री यादव नामक पण्डित के पास भेजा। उनके पास जाकर सकल शास्त्रों के तत्व को जान कर संस्कृत विद्या के पारङ्गत हुए। एकबार पण्डित जी ने किसी श्लोक का अर्थ बताते हुए कहा कि "भगवान् की आंखे बन्दर की आखों के समान होती हैं" रामानुजजी को यह सुन कर दारुण दुःख हुवा और कहा कि जिस शब्द का अर्थ आप बन्दर बताते हैं उसका अर्थ तो कमल होता है। और व्याकरण के अनेक प्रमाणों से सिद्ध भी कर दिया। यादव पण्डित चुप तो हो रहे परन्तु उसी काल से उनके हृदय में रामनुज जी के प्रति द्वेषोत्पन्न होगया। रामानुज जी गुरु का साथ छोड़ कर उन से पृथक् रहने लगे।

एकबार दक्षिण देश में किसी राज कुमारी को भूत लग गया। यादव पण्डित यन्त्र मन्त्र में निपुण समझा जाता था। राजा ने उसको बुलाया। उसने बहुत कुछ उपाय किया परन्तु सब व्यर्थ हुवा। किसी ने कहा रामानुज जी सिद्ध पुरुष हैं उनसे कोई उपाय करवाना चाहिये। राजाने रामानुज जी को बुलवाया उनकी भक्ति निष्ठा के प्रभाव से राज कन्या दर्शन मात्र से ही अरुग्ण होगई। इस घटना को देख कर राजा तथा अन्य पुरुषों के हृदयों में बड़ी श्रद्धा होगई। परंतु पण्डित जी के हृदय ईर्षा और द्वेष की अग्नि प्रचण्ड हो गई। उन्होंने अपने हृदय में ठानी कि किसी प्रकार इनका जीवनावसान करना चाहिये, रामानुज जी के भाई गोविन्द जी ने उनको सूचित किया कि पण्डित जी आपका वध करने पर उतारू हैं। यह सुन कर रामानुज जी उस स्थान को छोड़ एक जंगल में जाकर रहने लग गये। वहां एक बार विष्णु भगवान् लक्ष्मी सहित भील भीलनी के रूप में प्रकट हुए। उन्होंने रामानुज जी से जल मांगा। रामानुज जी ने जल पिलाया। जल पीने पर उन्होंने रामानुज को उपदेश दिया कि विना गुरु के ज्ञान और भक्ति का होना अति कठिन है। तुम कांचीपुरी में जाकर यामुनाचार्य को गुरु धारण करो। यह सुनकर रामानुज जी कांचीपुरी पहुंचे। वहां पर महापूर्णाचार्य जो कि यामुनाचार्य के प्रमुख शिष्य थे मिले। उनसे भील भीलनी के रूप में विष्णु भगवान के मिलने की कथा सुनाई उन्होंने कहाकि उस कूंआ का जल बहुत स्वादु है, वह विष्णु भगवान को बहुत प्रिय है। महापूर्णाचार्य से मिलकर वह यामुनाचार्य जी के निकट पहुंचे तो क्या देखते हैं कि उनका स्थूल शरीर निर्जीव पड़ा है। उनके हाथ की तीन अंगुलियां बन्द थीं और सब खुली। यह देख कर उनको बहुत कष्ट हुवा परन्तु भगवत् प्रेरणा से स्वयं ही उनके मुख से यह वाक्य निकले। १. भी सम्प्रदाय का रिवाज संसार में कम है। २. ब्रह्म सूत्र का भाष्य पूर्ण और सन्तोष जनक नहीं। ३. किसी को ईश्वर जीव और प्रकृति का यथार्थ ज्ञान नहीं। यदि यह अंगुलियां इसी हेतु बन्द हैं कि मैं इन तीनों कामों का भार अपने शिर परलूं तो अभी खुल जांय। भगवान् की विचित्र लीला है उसी समय अंगुलियां खुल गईं

और सबके सब चकित रह गये, परन्तु रामानुज जी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने महापूर्णाचार्य को गुरु धारण किया और उनके निकट रह कर गीता, रामायण और गुरु मन्त्र पर व्याख्या लिखी। कुछ काल के पश्चात् गृहस्थ जालसे निवृत्ति के अर्थ गुरु आज्ञा से संन्यासाश्रम में प्रवेश किया और रंगनाथ पुरी में रहने लगे। वहां रहकर यामुनाचार्य जी के विचारानुसार श्री सम्प्रदाय के प्रचार का कार्य करने लगे। एक बार महापूर्णाचार्य ने कहा कि यामुनाचार्य के मन्त्र प्रभाव से आवागमन का खटका निवृत्त होता है। परन्तु सर्वसाधारण में इसके प्रचार की आज्ञा नहीं है, नहीं तो बड़ा पाप होगा। यह सुन कर रामानुज जी ने कहा कि महाराज जिस मन्त्र के जाप के प्रभाव से लाखों जीवों का संसार से उद्धार होता है उस मन्त्र को छुपा कर रखना मुझे स्वीकार नहीं, चाहे मुझे इसके प्रचार में महापाप भी क्यों ना लगे। यह उत्तर देकर सर्व साधारण को उपदेश देना आरम्भ किया। जिसके फल स्वरूप अगणित स्त्री पुरुषों ने श्री सम्प्रदाय की छत्र छाया में प्रवेश किया।

उस समय दक्षिण देश में जैन मत का बहुत प्रचार था। रामानुज स्वामी ने राजा के दरबार में जाकर शास्त्रार्थ की इच्छा प्रकट की और कहा कि, जो हारे वही जीतने वाले का मत स्वीकार करे। शास्त्रार्थ में जैनियों को हार माननी पड़ी। और बहुतों ने वैष्णव धर्म को स्वीकार किया। चोला देश के जैनी राजा ने हठधर्मी से महापूर्ण और उनके शिष्य क्रूरेश की आंखें फोड़ दीं। महापूर्ण जी ने तो दुःखी होकर अपने शरीर का त्याग कर दिया और क्रूरेश स्वा० रामानुज जी के पास आया। उन्होंने आशीर्वाद दिया जिससे क्रूरेश की आंखें अच्छी हो गईं। दक्षिण देश में प्रचार करने के पश्चात रामानुज जी उड़ीसा देश को गये। वहां पर बड़ी धूम धाम से शास्त्रार्थ हुवा। शास्त्रार्थ में सारे विद्वान परास्त हुये और उड़ीसा देश वासी भी इनके शिष्य बन गये। रामानुजाचार्य जी में भक्ति के प्रताप से विलक्षण शक्ति थी। जो कोई भी इनसे मिलने आता था उन पर इनका बड़ा प्रभाव पड़ता था। वह जगन्नाथ जी से लौट कर दक्षिण देश में फिर पहुंचे। एक बार क्रूरेश और यादव पण्डित का शास्त्रार्थ हुवा जिसमें यादव पण्डित की हार हुई और उन्होंने रामानुजाचार्य को गुरु धारण किया। इस प्रकार इन के गुरु ने भी इनको गुरु धारण किया। "गुरु तो गुड़ ही रहा और चेला चीनी हो गया" यह कहावत रामानुज जी ही में घटती है।

धनुरदास नामक एक बड़ा ही लम्पट पुरुष था। वह अपनी स्त्री पर इतना मोहित था कि उस से क्षण मात्र भी पृथक् नहीं रहता था। एक बार वह रङ्गनाथ जी के मेले में आया। अपने साथ अपनी स्त्री को भी लाया। रामानुज जी ने उन दोनों को देख कर अपने पास बुलाया और उनको ईश्वर के प्रेम की महिमा सुनाई। पूर्व जन्म के सुकृत कर्मों के प्रभाव से उन दोनोंके हृदयमें ज्ञान का अंकुर विद्यमान था। वह स्वामी रामनुज जी के उपदेशामृत रूपी जल के छींटे के प्रभाव से हरित हो उठा। दोनों स्त्री पुरुष उन के शिष्य बन गये। कुछ काल में अपनी योग्यता के प्रभाव से दोनों स्त्री पुरुष गुरु के विशेष कृपापात्र बन गये। यह देख कर दूसरे शिष्यों को द्वेषोत्पन्न हुवा। किसी ने कहा कि स्वामी जी हमसे तो बोलते भी नहीं और इनको शिर पर चढ़ा लिया। किसी ने कहा कि वर्षों से हम सेवा करते हैं हमारी ओर तो देखते भी नहीं

और यह नाक के बाल बन गये - यह सब बातें रामनुज जी ने भी सुन ली। उन्हों ने इनके भ्रम को दूर करने की ठानी। एक दिन किसी शिष्य को आज्ञा दी कि इन चेलों की धोतियों को छुपा दो। उसने ऐसा ही किया। जब शिष्यों को उनके वस्त्र न मिले तो आपस में लड़ने लगे। स्वामी जी ने बुला कर कहा कि यदि किसी वैष्णव ने तुम्हारे वस्त्र लेलिये हैं तो तुम लड़ते क्यों हो ? वैष्णव का माल वैष्णव के लिये है। सब को प्रेम से रहना चाहिये। दूसरे दिन धनुरदास की निंदा करने वाले वैष्णवों को बुला कर कहा कि तुम सोती हुई धनुरदास की स्त्री के आभूषण उतार लो। तुम तो निर्धन हो और यह धनी हैं। वैसे तो तुम को न देंगे इस प्रकार लेलो। बस ! फिर क्या था ? वह तो यही चाहते थे। रात्री को जब दोनों स्त्री पुरुष सो गये तो वह चुपके चुपके पहुंचे। जब वह आभूषण उतारने लगे तो दोनों जाग उठे परन्तु यह सोच कर कि वैष्णवों का धन वैष्णवों के लिये है फिर आखें बन्द करलीं। जब वह एक ओर का अभूषण उतार चुके तो धरमदास की स्त्री ने दूसरी ओर के भी आभूषण उतरवाने के लिये करवट बदली तो सब के सब भाग गये। यह देख कर धरमदास को बहुत दुःख हुवा। और अपनी स्त्री को मार पीट कर निकाल दिया। प्रातः काल स्वामी रामानुज जी ने सब को बुलाया। धनुरदास की स्त्रीने कहा कि भगवन ! मैं निर्दोष हूं। रामानुज जी ने धरमदास से पूछा कि तुमने इस देवीको क्यों पीटा ? उसने कहा कि स्वामी जी वैष्णव धनहीन हैं वह रात्रि के समय आभूषण उतारने गये। मेरा जी उनको देख करगद्गद् हो गया और सोचा कि यह भूषण मेरे किस काम के हैं इनके तो काम आवेंगे। परन्तु इसने करवट बदलली और वह बिचारे भाग गये। यह वैष्णव धर्म से अनभिज्ञ है मैं इसे अपने पास नहीं रक्खूंगा। स्त्री ने कहा महाराज ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है। जब वैष्णव एक ओर के भूषण उतार चुके तो दूसरी ओर के भूषण उतरवाने को मैं ने करवट लीथी। परन्तु मेरा अभाग्य कि वह बिचारे डर कर भाग गये। वह मेरे यह सारे आभूषण ले जाते तो मैं अपने को धन्य समझती। आप मेरे पती को समझा दें कि वह मुझे क्षमा करदें। यह देख कर सब वैष्णव प्रेम से गद्गद् हो गये। तब स्वामी जीने सब वैष्णवों कोसमझाया कि अब तुम देखो कि यह सच्चे वैष्णव हैं या तुम। इन की अनन्य भक्ति के कारण ही,मेरा इन पर।अधिक स्नेह है। धनुरदास ने भी गुरु के पांव पड़कर स्त्री से क्षमा याचना की।

रामानुज जी।के बारह हजार शिष्य थे। इसमें ७४ शिष्य ऐसे थे। जो देश देशमें भ्रमण करके प्रचार किया करते थे। इनमें वासर और क्रूरेश मुख्य थे।

रामानुज जी १२० वर्ष तक जीवित रहे। इन के जीवन का अधिक भाग धर्म प्रचार में ही व्यतीत हुवा उन्होंने।। रङ्गनाथ,।गलता जी आदि कई तीर्थ भी स्थापित किये।

भूमानन्द ब्रह्मचारी

---

# सर्वसारोपनिषद् ।

बंध किस प्रकार है ? मोक्ष किस प्रकार है ? विद्या किस को कहते हैं ? जाग्रत्, स्वप्न और तुरीयावस्था किस को कहते हैं ? अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय क्या हैं ? कर्ता, जीव, पंचवर्ग, क्षेत्रज्ञ, साक्षी, कूटस्थ और अंतर्यामी क्या हैं ? प्रत्यगात्मा, परात्मा और माया किस को कहते हैं ?

बंधः-देहादिक अनात्ममें जीवका जो आत्मपने का अभिमान है सो बंध है ।

मोक्षः-अभिमान का नाश सो मोक्ष है ।

अविद्याः-जो अभिमान कराती है वह अविद्या है ।

विद्याः-जिस से अभिमान निवृत्त होता है वह विद्या है ।

जाग्रत्-आदित्य से अधिष्ठित मन आदि चौदह इन्द्रियों से शब्दादिक स्थूल विषयों की जब प्राप्ति होती है तब जाग्रत् अवस्था होती है ।

स्वप्नः शब्दादिक का अभाव होते हुऐ भी जब वासना सहित चौदह इन्द्रियों से वासनामय शब्दादिक की प्राप्ति होती है तब स्वप्नावस्था है ।

सुषुप्तिः जब चौदह इन्द्रियां विराम को प्राप्त हो जाती हैं और विशेष ज्ञान के अभाव के पश्चात् जब शब्दादिक की प्राप्ति नहीं होती तब सुषुप्ति अवस्था होती है ।

तुरीयाः तीनों अवस्थाओं का भावाभाव रूप साक्षी, स्वयं भाव से रहित, अंतर रहित जब चैतन्य रूप होता है तब तुरीया-चैतन्य कहलाता है ।

अन्नमयः-अन्न का कार्य कोश समूह अन्नमय कोश है ।

प्राणमयः-अन्नमय कोश में जब प्राणादि चौदह वायु का भेद रहता है तब प्राणमय कोश कहलाता है ।

मनोमयः-जब इन दोनों कोशों से युक्त हो कर आत्मा मन आदि चौदह इन्द्रियों से शब्दादि विषयों को और संकल्पादि धर्मों को ग्रहण करता है तब मनोमय कोश कहलाता है ।

विज्ञानमयः-जब आत्मा ऊपर के तीन कोश युक्त, उन में रहने वाले विशेष भावों को जानता है तब विज्ञानमय कोश कहलाता है ।

आनन्दमयः-जैसे वट के बीच में वट वृक्ष रहता है ऐसे जब आत्मा इन चार कोशों से युक्त और स्वकारण के अज्ञान में अर्थात् अव्यक्तपने में होता है तब आनन्दमय कोश कहलाता है ।

कर्ताः-जब अंतःकरण सुख दुःख बुद्धि से कर्ता भाव में आता है तब कर्ता कहलाता है जब इष्ट विषय में बुद्धि होती है तब सुख कहलाता है और जब अनिष्ट विषय में बुद्धि होती है तब दुःख कहलाता है ।

जीवः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध सुख दुःख का हेतु है । कर्म के अनुसार पुण्य पाप शरीर को प्राप्त होता है तो भी शरीर प्राप्त न हुवा हो ऐसा जब जाना जाय तो तब वह जीव कहलाता है ।

पंच वर्गः-मनादि, प्राणादि, इच्छा आदि, तत्व आदि और पुण्यादि पांच वर्ग हैं ।

क्षेत्रज्ञः—इन पांचों वर्गों के धर्म वाला आत्मा बिना ज्ञान इन वर्गों से रहित नहीं होता और जो उपाधि शाश्वत रूप से भासती है वह लिङ्ग शरीर है, उसको हृदय ग्रन्थि कहते हैं, उस में जो चैतन्य प्रकाशता है उसको क्षेत्रज्ञ कहते हैं।

साक्षीः—ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय इन तीनों के आविर्भाव और तिरोभाव को जानने वाला, स्वयं ज्योति आत्मा जब आविर्भाव और तिरोभाव रहित होता है तब उस को साक्षी कहते हैं।

कूटस्थः—ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यन्त सब प्राणों और बुद्धियों में शेष रूप से देखने में आता हुआ आत्मा जब सब प्राणों और बुद्धि में स्थिति करने वाला होता है तब उस को कूटस्थ कहते हैं।

अंतर्यामीः—कूटस्थ से आवृत्त हुए भेद स्वरूप की प्राप्ति का कारण रूप हो कर आत्मा सब क्षेत्रों में मणियों के समूह में सूत्र की समान जब प्रोया हुआ भासता है तब उस को अंतर्यामी कहते हैं।

प्रत्यगात्माः सत्य, ज्ञान, अनंत और आनन्द रूप, सब उपाधियों से रहित, कड़े, कुंडल आदि उपाधियों से रहित सुवर्ण के समूह की समान विज्ञान चिन्मात्र स्वाभाव वाला आत्मा जब प्रकाशता है तब वह त्वं पदार्थ रूप है।

परब्रह्मः—ब्रह्म, सत्य, ज्ञान और अनंत रूप है। सत्य का अर्थ अविनाशी है। देश, काल और वस्तुओं के परिच्छेदों के नाश होने पर भी जिस का नाश नहीं होता उस को अविनाशी कहते हैं। नाम, उत्पत्ति, विनाश और आड़ से रहित जो चैतन्य है उस को ज्ञान कहते हैं। मट्टी के विकार में मट्टी के समान, सुवर्ण के विकार में सुवर्ण समान, तंतु के विकार में तंतु समान, और अव्यक्तादि सृष्टि के प्रपंचों में पूर्ण व्यापक रूप से जो चैतन्य है उसको अनंत कहते हैं। सुख, चैतन्य स्वरूप वाला, परिणाम रहित, समुद्र रूप और अवशिष्ट सुख रूप वाला आनन्द कहलाता है। पदार्थ रूप उपाधि से रहित और तत्पदार्थ रूप उपाधि के भेद से विलक्षण, आकाश की समान सत्ता मात्र स्वभाव वाला परब्रह्म है।

मायाः—अनादि, अंत वाली, प्रमाण और अप्रमाण के योग से साधारण, सत् नहीं, असत् नहीं तथा सदसत् भी नहीं, आप ही अधिक रूप से, विकार से रहित दीखती, सत् आदि अन्य लक्षणों से रहित माया है। यह माया अज्ञान रूप तुच्छ असत् रूप होते हुये। भी तीनों काल में मूढ़ों को सत्य समान प्रतीत होती हुई. सत्व बुद्धि रूप लौकिकों को इस का स्वरूप इस प्रकार है, ऐसा कहने को अशक्य है।

मैं आत्मा उत्पत्ति से रहित, दश इन्द्रियों से रहित, बुद्धि मन अहंकार से रहित, अप्राण रूप, अमन रूप, बुद्धि आदिका शुभ्र रूप, साक्षी रूप, निज रूप और चिन्मात्र रूप हूं। मैं कर्ता रूप भोक्ता रूप नहीं हूं। प्रकृति का साक्षी रूप हूं। मेरी समीपता से देहादि चैतन्य रूप हों ऐसे दीखते हैं। मैं स्थान नित्य, सदानन्द, शुद्ध, ज्ञानमय, मल रहित, सब भूतों का आत्मा रूप, विभु, साक्षी, ब्रह्मरूप, सर्व वेदान्त से जानने योग्य, आकाश के समान होने से अभेद, नाम, रूप और कर्म से रहित, मैं प्राण रूप नहीं हूं इस से मुझ में क्षुधा पिपासा नहीं है। मैं चेतस् रूप नहीं हूं इस लिये मुझ में शोक और मोह कैसे होवे? मैं कर्ता से रहित होने से बंध मोक्ष भावसे रहित हूं।

# गोभक्ति ।

**गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।**
**गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥**

आज हम पाठकों के समक्ष में गोभक्ति के विषय में कुछ पंक्तियां उद्धृत करते हैं। जो गौवें अपने दुग्ध और घृत से प्रजा की रक्षा करती हैं, जिनके पुत्र हमारे हलों में चल कर हमारे निर्वाहार्थ उत्तम उत्तम भोज्यान्नों को उत्पन्न करते हैं, जिनसे हम नाना प्रकार के हव्य कव्यादि विधान करते हैं, उन गौवों की भक्ति पूजा नहीं करना मानो अपयश और कृतघ्नता की पोट शिर पर उठा कर नर्क द्वार का मार्ग सरल करना है। मनुष्य ने कितने ही यज्ञ किये हों, कितनी ही दक्षिणा दी हो, कितने ही सुकृत कर्म किये हों परन्तु यदि वह गोभक्ति से शून्य है तो उसके समस्त यज्ञ, समस्त दान सब व्यर्थ होते हैं। गौ के सदृश न यज्ञ है, न दान है, न राज है, न पाठ है। इस विषय पर हम पाठकों को एक कथा सुनाते हैं।

महाभारत में कथा आती है कि एक समय कोई व्याधा जल से मछली पकड़ कर अपना जीवन निर्वाह करता था। उसको एक महात्मा मिले उन्होंने उसको अहिंसा धर्म का उपदेश दिया, "कि प्रत्येक मनुष्य को अहिंसा धर्म का पालन करना चाहिये। जिस प्रकार हमको हमारे प्राण प्रिय हैं और एक कांटे के लगने पर ही सी, सी करते हैं इसी प्रकार दूसरे प्राणियों को भी अपने प्राण प्रिय होते हैं। बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि सब प्राणियों को अपने समान देखे। जो पुरुष जगत में सब प्राणियोंको अभय देता है वह निःसंदेह प्राण दाता है। जो मनुष्य मन, वचन और कर्म से हिंसा को त्याग देता है और मांस भक्षण नहीं करता है वह सब दोषों से छूट जाता है। शास्त्र में "अहिंसा परमो धर्मः" का उपदेश दिया है। इसलिये हे वधिक! तुम इस निकृष्ट कर्म को छोड़ दो"। तब व्याधे ने उत्तर दिया कि महाराज। मेरे पास मेरे जीवन के निर्वाह का और कोई उपाय नहीं है। यदि मैं यह कर्म न करूं तो मेरे स्त्री बच्चे सब का शीघ्र ही नाश हो जाय और मैं पाप का भागी बनूं। तब महात्मा ने कहा कि अच्छा तू जल में तीन बार पाश डाला कर और उस तीन बार के पाश डालने पर जो कुछ तुझे प्राप्त हो उसीमें सन्तोष मान लेना चाहिये। व्याधे ने यह उपदेश स्वीकार किया। एक बार जिस सरोवरसे वह मछली पकड़ा करता था उसमें च्यवन ऋषि समाधि लगाकर बैठ गये व्याधे ने आकर दो बार पाश डाला परन्तु कोई भी मछली पाश में नहीं आई। जब उसने तीसरी बार पाश डाला तो च्यवन ऋषि ही उसके पाश में आगये। बाहर आनेपर उनकी समाधि खुली उन्होंने व्याधेको कहा हम को छोड़ दे। व्याधे ने कहा कि महाराज! मैं एक महात्मा के उपदेश से जल में तीन ही बार पाश डालता हूं और इससे जो कुछ प्राप्त होता है उस में निर्वाह करता हूं। च्यावन ऋषि किसी राजा के गुरु थे उन्होंने व्याधे से कहा कि तू हमको राजा के पास लेजाकर बेचदे और उससे जो कुछ मिले अपना निर्वाह करना। व्याधा ऋषिको राजाके पास ले गया और सारा वृत्तान्त सुनाया। राजा ने सब समाचार सुन कर विचारा कि गुरु के बदले में सारा राज्य भी समुद्र में एक बून्द के तुल्य भी नहीं। हा! अब मैं गुरु के बदले में इस धीवर को क्या दूं? राजा

इसी प्रकार के विचारों में डुबकियां लगाने लगा। गुरु जी ने गो दान महात्म्य बता कर कहा कि, एक गौ का दान शत अश्वमेध यज्ञों के तुल्य होता है। जो पुरुष गोदान करता है वह गौ उस पुरुष के लिये परलोक में पवित्र नदी रूपा होजाती है। पाठको! जिस गो के तुल्य न राज है न पाठ है, न यज्ञ है उस गो की भक्ति पूजा करने से जो पुण्य मिलता है उस की तुलना क्या किसी अन्य कर्म से हो सकती है? प्रत्येक हिन्दू मुक्त कण्ठ से गो भक्तिको स्वीकार करता है। जो पुरुष गो हिंसा आदि क्रूर कर्म करते हैं न जाने उन पुरुषों का इस संसार में कैसे कल्याण होगा? हमारे शास्त्र तो चिल्लाते हैं कि:-

घातकः खादको वापि तथा यश्चानुमन्यते।
यावंतिस्तस्या रोमाणि तावद्वर्षाणि मज्जति॥

गौ को मारने वाला, खाने वाला और गौ हत्या का अनुमोदन करने वाला वाला गौ के शरीर में जितने रोम होते हैं उतने वर्ष पर्यन्त नरक में पड़ते हैं। वेद में स्वयं भगवान् उपदेश देते हैं कि:-

गां मा हिंसी।

हे पुरुषो! गो हिंसा मत करो। हिंसा करना तो दूर रहा हमारे शास्त्र तो गो की चोरी को भी सारे सुकृतों को हरने वाली बताते हैं। महाभारत में अनुशासन पर्व में कथा आती है कि, एकबार द्वारिका पुरी के यादव नगर से बाहर गये उनको घूमते २ प्यास लगी। तब उन्होंने जल की इच्छा से कूप का अन्वेषणारम्भ किया। थोड़ी देर में उन्होंने एक घास फूस से ढका हुवा कूप देखा। उन सबने मिल कर घास फूंस हटा दिया। तब उन्होंने कूप में एक बड़े आकार वाला गिरगट देखा। सब ने मिल उस गिरगट को कूप से निकालने का बहुत यत्न किया परन्तु सब व्यर्थ। निदान! वह श्री कृष्ण जी के पास गये और कहाकि, एक बड़े आकारका गिरगट कूपमें पड़ा है। हममें से कोई उसको बाहर नहीं निकाल सका। श्रीकृष्ण ने वहां पहुंच कर गिरगट को बाहर निकाल कर पूछा कि तुम कौन हो? उसने उत्तर दिया कि मैं पहले जन्म में एक विशाल देशका अधिपति था। मैंने अपने उस जन्म में अनेक यज्ञ किये थे बहुत दान दिया था। उस समय मेरे तुल्य दानी इस भूमण्डल पर कोई न था। एकबार एक ब्राह्मण परदेश को गया था। उसकी गौ भटकती २ मेरे गोधन में मिल गई मेरे गोरक्षकों ने उस गौ की गणना भी मेरे ही गोधन में करली। कुछ काल के पश्चात् मैंने उस गौ का दान दूसरे ब्राह्मण को कर दिया। परदेश को गये हुए ब्राह्मण ने परदेश से लौट कर अपनी गौ की खोज की तो उसको वह गौ दूसरे ब्राह्मण के घर में मिली। तब उस ब्राह्मण ने कहा कि "यह गौ तो मेरी है। दूसरे ने कहा कि मेरी है। वह लड़ते लड़ते मेरे पास आये। मैंने जिस ब्राह्मण को गो दानमें दी थी कहा कि तू इस गौ के बदले में १ लाख गौ लेले और यह गौ देदे। तब उसने कहा कि यह गौ मेरे देश काल के अनुकूल है, शान्त है, प्रेम करने वाली है और दुधार है। मैं इस गौको नहीं दे सकता। इस प्रकार कह कर वह ब्राह्मण चला गया। तदनन्तर मैंने दूसरे ब्राह्मण से प्रार्थना की, कि आप इस गौ के बदले में एक लाख गौ लेलें। तब उस ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि मैं राजाओं का दान नहीं लेता। आप कृपा करके मेरी गौ ही मुझे दे दीजिये। मैंने उसे बहुत स्वर्ण, हाथी, घोड़े, भूमि आदि देना चाहा परन्तु हे मधु-

सूदन ! उसने कुछ भी न लिया और अपने घरको चला गया। तदनन्तर मैं कालके प्रभाव से मरने के पश्चत् यम राज के समक्ष में गया। यमराज ने मेरे ऊपर गौ की चोरी का अपराध लगा कर एक सहस्र वर्ष गिरगट के रूप में रहने का दण्ड देकर मृत्यु लोकमें भेज दिया। हे मधुसूदन। मैंने भूल से एक गौ की चोरी की थी इसी से इतना कष्ट पाया। पाठको ! अब आप की समझ में भली प्रकार आगया होगा कि गो वध तो दूर रहा भूलसे।एक गौकी चोरी भी मनुष्य के समस्त सुकृतों को हरण कर लेती है। इसी लिये तो वेद में गो।को-

'माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वासादित्यानाम्'

आदि बता कर अन्त में कहा है कि "मागामनागा मदितिं वधिष्ट" कि हे मनुष्यो ! अदिति रूप अवध्य गौ की हिंसा मत करो। महाभारत में लिखा है:-

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः।
वृद्धिमाकांक्षता नित्यं गावः कार्या प्रदक्षिणा ॥

गोएं सब प्राणियों का पोषण करने के कारण उनकी माता कहलाती हैं, वे सब सुख के देने वाली हैं। अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को सार्वदा उनकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये।

सन्ताड्या न तु पादेन गवां मध्ये च न व्रजेत्।
मङ्गलायतनं देव्यस्तस्मात्पूज्याः सदैव हि ॥

गौओं के लात न मारे, दो गौ खड़ी हों तो उनके बीच में होकर न जाय। गौएं मङ्गल की स्थान और देवी रूप हैं अतः इनकी सदा पूजा करनी चाहिये। गौ प्राणियों में सब से उत्तम है, उनकी पूजा और रक्षा करने से मनुष्य इस संसार सागर से पार उतर सकता है। गौ प्रजा का घृत और दुग्ध से पोषण करती हैं। गौएं त्रिलोकी में पवित्र, पुण्य-रूप तथा श्रेष्ठ हैं। राजा मान्धाता, यौवनाश्व, ययाति, नुहुष और दिलीप आदि गौ के प्रताप से देवताओं को भी दुर्लभ ऐसे उत्तम लोकों को गये। इन गौओं की कृपा से ऐसा कौनसा पदार्थ है जो मनुष्यों को प्राप्त न हो। गौ के शरीर में समस्त देव-ताओं का निवास है जैसा कि नीचे के श्लोक से स्पष्ट प्रतीत होता है:-

पृष्ठे ब्रह्मा गले विष्णु र्मुखे रुद्रः प्रतिष्ठितः।
मध्ये देवगणाः सर्वे रोम कूपे महर्षयः ॥
नागाः पुच्छे खुराग्रेषु ये चाष्टौ कुल पर्वतः।
मूत्रे गंगादयो नद्या नेत्रयो शशि भास्करौ ॥

गौ की पृष्ठ में ब्रह्मा, गले में विष्णु, मुख में रुद्र, मध्य में देवता, रोम कूपों में महर्षि, पूंछ में नाग, खुराग्रों में पर्वत, मूत्र में गंगा और नेत्रों में सूर्य चन्द्रमा का निवास है। अहा ! जिस गौ के शरीर में इस प्रकार से समस्त देवतों का निवास है तभी तो हमारे पूर्वजों ने गो भक्ति का उपदेश दिया है।गो मूत्र में ही अनेक गुण हैं। कैसा ही पुराने से पुराना तपेदिक क्यों न हो नित्य प्रातःकाल गो मूत्र के सेवन से अवश्य दूर होता है। जीर्ण ज्वर और कासादि में भी गो मूत्र बहुत ही लाभ दायक है। हो भी क्यों नहीं ? क्योंकि गौ के मूत्र और पुरीष में लक्ष्मी का निवास है। एक बार लक्ष्मी ने गौओं से आकर प्रर्थना की थी कि " हे गोमाताओ! तुम कृपा करके मुझे अपने शरीर में स्थान देदो।

तब गौओंने कहा था कि हम तो सर्वांग पुष्ट हैं, हमें तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। पश्चात् लक्ष्मी के बहुत ही प्रार्थना करने पर पुरीष और मूत्र में रहने को स्थान दिया था। इसीलिये तो कहा है:-

गावस्तिष्ठति यत्रैव तत्तीर्थं प्रकीर्तितम्।
प्राणांत्यक्त्वा तत्र सद्यो मुक्ति भागी भवेत् ध्रुवम्॥

जिस स्थान पर गायें बैठती हैं वह स्थान तीर्थ कहलाता है। गौओंके बैठने के स्थान पर यदि पुण्य प्रताप से किसी का शरीरान्त हो जाय तो वह अवश्य मुक्तिको प्राप्त होता है।

यस्यैकापि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुचारिणी।
मंगलानि कुतस्तत्र कुतस्तत्र तमक्षयः॥

जिस अभागी पुरुष के घर में एक भी बच्छे वाली गौ नहीं है, उसके घर में कहां मंगल और कहां अन्धाकार का नाश! अतः गौओंमें भक्ति रखनेवाला पुरुष जो २ चाहता है सो २ पाता है। मनुष्य गौओं की भक्ति करने से वाञ्छनीय वस्तुको प्राप्तकर सकते हैं। गो भक्तिसे पुत्र चाहने वालेको पुत्र मिलता है, धन चाहने वालेको धन, धर्मार्थीको धर्म, विद्यार्थी,को विद्या और सुखार्थी को सुख की प्राप्ति होती है। इस गो भक्ति का श्रीगणेश गत कई वर्षों से श्री भगवद्भक्ति आश्रम में जारी है। आश्रम निवासी स्वयं अपने हाथों से गौओं की सेवा निष्काम भाव से करते हैं। वह अपने परीश्रम से गौवों के बैठने के स्थानों को इतना स्वच्छ और पवित्र रखते हैं कि कई अंग्रेजों ने देख कर आश्चर्य किया और यह शब्द कहे कि "अब तक हम को यह विश्वास न था कि भारत वर्ष में भी गौओं के रहने के स्थान इतने स्वच्छ रह सकते हैं" गौओं के गोबर और मूत्र को तत्काल उनके बैठने के स्थान से हटा दिया जाता है और उसके स्थान में स्वच्छ रेत डाल दिया जाता है। यदि आपको गो सेवाका सुन्दर आदर्श देखना हो, तो एक बार श्रीभगवद्भक्ति आश्रममें पधार कर देखें और उसी प्रकार से आप भी गो सेवा करना सीखें।

भूमानन्द ब्रह्मचारी

---

# कर्म

तृतीयांक से आगे।

[ले० म० रूपराम जी बनस्थली]

प्रत्येक मनुष्य के अन्तःकरण में बहुत दूर जाकर एक ऐसी महान् शक्ति प्रकाश कर रही है, जो लोक और परलोक के समस्त पदार्थों में केवल इतना ही प्रकाश करती है, जैसे सूर्य्य के सामने तारा। इस महान् शक्ति की कोई सीमा नहीं। वह धर्म कर्म के बन्धन में नहीं, वह सुख और दुःख दोनों से परे और दूर है। वहां लोक और परलोक की गरम लूयें उसको झुलसाने में असमर्थ हैं। इस महान् शक्ति तक पहुंचना और उसमें अपना जीवन व्यतीत करना प्रत्येक मनुष्य का आदर्श है। हमें उस महान् शक्ति तक पहुंचने में कितना मार्ग तय करने की जरूरत है? वैसे तो यह सफर दूर नहीं है परन्तु इसमें पांच बड़े मजबूत फौलादि फाटक जड़े हुये हैं, जिनका तोड़ना अगर असम्भव नहीं तो आसानभी नहीं है। हरएक फाटक पर तेज और नोकदार फौलाद के कुम्से लगे हुये हैं। जो मनुष्य को उस महान् शक्ति तक पहुंचने में घायल और

चकनाचूर कर देते हैं। यह महान शक्ति अपने स्वाभाविक गुण से हमको अपनी तरफ खैंच रही है। परन्तु हमारा वहां तक पहुंचना उन फाटिकोंने बन्दकर रक्खा है। यह फाटक कौन २ से हैं यह काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार हैं, जो एक दूसरे से ज्यादा मज़बूत और दृढ हैं। जब हम दुनियां के आनन्द न पाकर परम शान्ति की तरफ चलते हैं तो हमारा मुकाबला इन फाटकों से होता है। इन फाटकों को तोड़ डालने के लिये सहायता करने में परमात्मा सद्गुरु रूप में आकर हमको उन फाटिकों के तोड़ने का रास्ता बतलाते हैं, और हमको उस महान शक्ति तक पहुंचने में सहारा देते हैं और हमारे और उस महान शक्ति के बीच में जो रुकावट पड़ी हुई है उसको रगड़ २ कर रास्ता साफ कर देते हैं। हमको इस रगड़ा रगड़ी में कुछ दुःख अवश्य प्रतीत होता है परन्तु यह दुःख ज्यादा दिन नहीं ठहरता यदि हमको उस महान शक्ति से मिलना है तो उसके लिये हमें भगवान की अनन्य भक्ति करनी पड़ेगी जिस से हम समस्त संसार को उसी का रूप समझने लगेंगे। अनन्य भक्त को लौकिक और पारलौकिक पदार्थोंसे मुंह मोड़ केवल भगवान को ही पाना होगा। जिन्होंने उस महान शक्ति तक पहुंचने की अपनी योग्यता प्राप्त करली है उसके सामने लोक और परलोक के दिल लुभाने वाले पदार्थों का मूल्य नहीं रहता, या यों कहो कि लोक और परलोक के समस्त पदार्थ उसकी आज्ञा पालन करने के लिये हरवक्त खड़े रहते हैं। इंजील में लिखा है कि जब लोग मर कर परमात्मा के पास पहुंचेंगे तो परमात्मा पूछेगा कि मैं भूखा था तूने मुझे कुछ नहीं खिलाया, मैं प्यासा था मैं तेरे द्वार पर आया परन्तु तैंने पानी नहीं पिलाया, मैं घायल था तेरे पास आया तैंने मेरी मरहम पट्टी नहींकी, मैं नंगा था मैंने कपड़ा मांगा परन्तु तैंने नहीं दिया। तब मनुष्य उसके उत्तर में कहेगा भगवन् क्या आप भी भूखे रह सकते हैं, प्यासे रह कमाते हैं, घायल हो सकते हैं, नंगे रह सकते हैं तो भगवान कहेंगे कि, जाओ तुम्हारे लिये मेरे पास जगह नहीं है तुमने मुझे नहीं पहिचाना।

मुसलमानों का मज़हब कहता है कि, मनुष्य को भगवान ने केवल दर्द दिल के लिये बनाया है। एक जगह यह भी कहा है कि:-

दिल बदस्त आवरकि हज्जे अकबरस्त।
अज़ हज़ारां काबा यक दिल बेहतरस्त॥

इसका अर्थ यह है कि, मनको वशमें कर कि यहबड़ा भारी तीर्थ है हज़ारों तीर्थोंकी अपेक्षा मनको वशमें कर लेना अच्छा है।

अब हमारे सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित होता है कि, मनुष्य के लिये कौनसा कर्म आचरणीय है। इसका उत्तर हम भक्ति के अगले किसी अंक में देने प्रयत्न करेंगे।

अपूर्ण

---

## महात्माओं के वाक्य।

मैं चुपचाप पड़ा रहूंगा और तारोंसे भरी और धीरता से अपना शिर झुकाये हुये रात्रि की भांति प्रतीक्षा करूंगा।

निःसन्देह प्रभातका आगमन होगा और अन्धकार का नाश होगा और तेरी वाणीकी सुनहरी धारायें आकाश को चीर कर नीचे की ओर बहेंगी।

तब मेरे पक्षियों से प्रत्येक घोंसले से तेरे शब्द गीतों के रूपमें उड़ेंगे और मेरी समस्त वन वाटिकाओं में तेरे सुर फूलों के रूप में खिल उठेंगे।

वही तो मेरा अन्तरात्मा है जो मेरे जीवात्मा को अपने गम्भीर अदृश्य स्पर्शों से जागृत करता है।

यह वही है जो इन नेत्रों पर अपना जादू करता है और मेरे हृदय रूपी वीणा के तन्तुओं पर सुख दुःख के विविध सुरोंको आनन्द से बजाता है।

यह वही है जो इस माया के जाल को सुनहले और रुपहले हरे और नीले अनेक रंगों में बुनता है और उन जालों में से अपने चरणों को बाहर निकलने देता है जिनके स्पर्श मात्र से मैं अपने आपको भूल जाताहूं।

दिन आते हैं और युगके युग बीतते जाते हैं यह केवल वही है जो मेरे हृदय को नाना नामों नाना रूपों और हर्ष शोक के नाना उद्वेगों में घुमाता है।

त्याग मेरे लिये मुक्ति नहीं है। मुझेतो आनन्द के सहस्रों बन्धनों में मुक्ति का रस आता है।

तू मेरे लिये सदा नाना रंगों और गन्धों के अमृत की वर्षा किया करता है और मेरे इस मिट्टी के पात्र को लबा लब भर देता है। मेरा संसार अपने सैंकड़ो दीपों को तेरी ज्योति से प्रज्वलित करेगा और तेरे मन्दिर की वेदी पर उन्हें चढ़ायेगा।

नहीं मैं अपनी इन्द्रियों के द्वार कभी बन्द न करूंगा। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध का सुख तेरे परमानन्द को उत्पन्न करेगा।

हां, मेरे सब भ्रम और संशय तेरे आनन्द की ज्योतिमें भस्म हो जायेंगे, और मेरी सब वासनायें प्रेम रूपी फलों में परिणत हो जांयगी।

हे प्रभु! हम जीवोंको कुछ दिया है वह हमारी सब आवश्यकताओं को पूरा करता है, और फिर तेरे पास ज्यों का त्यों लौट जाता है।

नदी अपना नित्य का काम करती है और खेतों बस्तियों में होकर वेग से बहती चली जाती है। तथापि उसकी निरन्तर धारा तेरे चरणों की ओर प्रक्षालन के लिये घूम जाती है।

फूल अपने सौरभ से वायु को सुगन्धित करते हैं तथापि उनकी अन्तिम सेवा यही है कि अपने को तेरे चरणों में अर्पण करें।

तेरी इस पूजा से संसार कुछ दरिद्री नहीं होता कवि के शब्दों का अर्थ लोग अपनी रुचि के अनुसार लगाते हैं किन्तु उनके वास्तविक अर्थ का लक्ष तूही है॥

हे मेरे जीवन स्वामी! क्या दिन प्रति दिन मैं तेरे सम्मुख खड़ा रहूंगा? हे भुवनेश्वर! क्या कर जोड़ कर मैं तेरे सन्मुख खड़ा रहूंगा?

क्या तेरे महान आकाशके नीचे निर्जन नीरव अवस्था में नम्र हृदय से मैं तेरे सन्मुख खड़ा रहूंगा?

क्या तेरे इस कर्म प्रान्त संसारमें जो परिश्रम और संग्राम के कोलाहल से आकुल है, दौड़ धूप में लगे हुये लोगों के बीच में रहते हुये मैं तेरे सन्मुख खड़ा रहूंगा?

हे राजाधिराज! जब इस संसार में मेरा कार्य समाप्त हो जायगा तो क्या मैं एकान्त और नीरव दशा में तेरे सन्मुख खड़ा रहूंगा?

मैं तुझे अपना ईश्वर मानता हूं और इसलिये

तुझसे दूर खड़ा रहता हूं मैं तुझे अपना नहीं समझता और इसलिये तेरे निकटतर आने का साहस नहीं करता। मैं तुझे अपना पिता मानता हूं और तेरे चरणों में प्रणाम करताहूं, किन्तु मैं तुझे अपना मित्र नहीं समझता और इसलिये तेरा हाथ नहीं पकड़ता।

जहां तू नीचे उतर कर आता है और अपने आपको मेरा बतलाता है वहां तुझे अपने हृदय से लगाने और अपना साथी मानने के लिये मैं खड़ा नहीं होता।

भाइयो! मैं केवल तुम्हीं को अपना भाई समझताहूं। मैं उनकी पर्वाह नहीं करता मैं अपनी कमाई में उनको सम्मिलित नहीं करता और इस प्रकार तुझे भी अपने सर्वस्वमें हिस्सा नहीं देता।

मैं सुख दुःख में उनका साथ नहीं देता और इस प्रकार तेरे पास भी नहीं खड़ा होता। मैं दूसरों के लिये अपना जीवन देने से हिचकिचाता हूं और इस प्रकार जीवन महासागर में गोता नहीं लगाता।

हमारे पास वृथा नाश करनेके लिये तनिकभी समय नहीं है और इसलिये हमें अपने अवसरों और सफलताओं के लिये छीना झपटी करनी चाहिये। हम इतने दरिद्री हैं कि विलम्ब नहीं कर सकते।

पर झगड़ा करने वालों के साथ झगड़ा करने में ही मेरा समय निकल जाता है और इसलिये तेरी वेदी अन्त तक बिलकुल सूनी पड़ी रह जाती हैं। दिन समाप्त होने पर मैं यह डरता हुआ झपटता हूं कि कहीं तेरा द्वार बन्द न होजाय पर मुझे मालुम होता है कि अभी समय बाकी है।

जब जीव तुझे जान जाता है, तब उसके लिये कोई बेगाना नहीं रहता, तब उसके लिये सब द्वार खुलजाते हैं। हेप्रभु! मुझे यह वर दो कि मैं अनेकत्व के बीच में एकत्व के अनुभवानन्द से कभी वंचित न रहूं।

# मानवधर्म सार।

तृतीयोऽध्यायः॥

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्॥१॥

अस्खलित ब्रह्मचर्य्य के साथ यथाक्रम तीनों वेदों को, वा दो वेदों को वा एक ही वेद को पढकर गृहस्थआश्रम में प्रवेश करे॥ १॥

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्तेसर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः॥

जहां स्त्रियों का मान होता है, वहां देवता आनन्द मानते हैं, और जहां इनका मान नहीं होता है वहां सब कर्म निष्फल जाते हैं॥ २॥

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु तत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा॥३॥

जहां कुलीन स्त्रियें शोक में रहती हैं, वह कुल जल्दी नष्ट होता है, और जहां यह शोक नहीं करती हैं, वह सदा बढ़ता है॥ ३॥

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥४॥

अनादर पाई स्त्रियें जिन घरों को शाप देती हैं, वह जादू से नष्ट हुए की तरह बिलकुल नष्ट होजाते हैं॥ ४॥

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।

भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ५ ॥

इसलिये कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को चाहिए कि पर्वों और त्योहारों में वस्त्र भूषण और भोज्य वस्तुओं से सदा इनका मान करें ॥ ५ ॥

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥

जिस कुल में स्त्री से भर्त्ता और भर्त्ता से स्त्री सदा प्रसन्न है, वहां कल्याण अटल है ॥ ६ ॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥७॥

स्त्री की प्रसन्नता से सारा कुल प्रसन्न रहता है, उसके अप्रसन्न रहने से सारा कुल अप्रसन्न रहता है ॥ ७ ॥

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनम् ॥८

पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ, तर्पण पितृयज्ञ, होम देव यज्ञ, बलि भूतयज्ञ, और अतिथियों का पूजन मनुष्य यज्ञ है ॥ ८ ॥

पञ्चैतान्योमहायज्ञान्न हापयति शक्तितः ।
स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते ॥९

जो इन पांच महायज्ञों को यथाशक्ति त्यागता नहीं है, वह सदा घर में रहता हुआ भी पापों से लिप्त नहीं होता है ॥ ९ ॥

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥१०

अग्नि में डाली हुई आहुति सूर्य को पहुंचती है, सूर्य से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न उस से सब प्राणधारी होते हैं ॥ १० ॥

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः ११

जैसे सब प्राणधारी वायु का सहारा लेकर जीते हैं, वैसे सब आश्रम गृहस्थ का सहार लेकर जीते हैं ॥ ॥ ११ ॥

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि ।
पितॄञ्श्राद्धैश्च नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥१२

यथाविधि स्वाध्याय से ऋषियों को पूजे, होम से देवताओं को, श्राद्धों से पितरों को, अन्न से मनुष्यों को, और बलि देने से भूतों को ॥ १२ ॥

यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्त्वा विधिवद्गुरोः ।
तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्त्वा द्विजो गृही ॥

गुरु विधि अनुसार गौ देकर जिस पुण्य फल को प्राप्त होता है उस पुण्य फल को भिक्षा देने से प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

विद्यातपः समृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ।
निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात् ॥

ब्राह्मणों के मुख जो विद्या और तप से पूर्ण है, वह अग्नियें हैं, उनमें जो कुछ होमा जाता है वह बड़ी कठिनाई और बड़े पाप से बचाता है ॥ १४ ॥

तृणानि भूमिरुदकं चतुर्थी च सूनृता ।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥१५

कुशा भूमि, जल और चौथी मीठी वाणी, ये भलों के घरों में कभी दूर नहीं होतीं ॥ १५ ॥

उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः ।
तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥

जो मन्द बुद्धि गृहस्थ दूसरेके अन्न पर निर्वाह करते हैं, वह मरकर उस से अन्नादि देनेवालों के पशु बनते हैं ॥ १६ ॥

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत् ।
धनं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वाऽतिथिपूजनम् ।१७

वह स्वयं न खाए, जो अतिथि को न खिलावे अतिथि का पूजन, धन, दीर्घ जीवन और स्वर्ग का देनेवाला है ॥ १७ ॥

सुवासिनीः कुमारीश्च रोगिणो गर्भिणीः स्त्रियः ।
अतिथिभ्योऽग्र एवैतान्भोजयेदविचारयन् ॥ १८

नयी ब्याही स्त्रीयों, छोटी कन्याओं, रोगी जन और गर्भवती स्त्रियों को बिना विचारे अतिथियों से पहले भोजन दे देवे ॥ १८ ॥

अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात् ।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते ॥ १९ ॥

वह निरा पाप खाता है जो निरा अपने निमित्त पकाता है, क्योंकि जो यज्ञ से बचा भोजन है, वह भलों का अन्न कहलाता है ॥ १९ ॥

न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ।
पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ॥ २०

धर्म का जानने वाला दैवकर्म में ब्राह्मण की परीक्षा न करे, पर पित्र्यकर्म जब करने लगे, तो सावधानता से परीक्षा करे ॥ २० ॥

## चतुर्थोऽध्यायः ।

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥१॥

सुख चाहने वाला पूरे सन्तोष का आश्रय लेकर संयमी रहे, क्योंकि सुख का मूल सन्तोष है, और दुःख का मूल असन्तोष है ॥ १ ॥

मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ संध्ययोश्च यथा दिवा ॥

दिन में मल मूत्र का त्याग उत्तराभिमुख होकर करे, रात में दक्षिणाभिमुख होकर, और दोनों सन्ध्याओं में दिन की तरह करे ॥ २ ॥

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ।
यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु च ॥ ३॥

छाया में वा अन्धेरे में चाहे रात वा दिन हो, जिधर इच्छा हो मुख करे, तथा प्राणों की बाधा के भयों में यथेच्छ मुख करे ॥ ३ ॥

नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम्।
नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौ प्रतापयेत् ॥४॥

अग्नि को मुंह से न फूंके, नग्न स्त्री को न देखे, अपवित्र वस्तु को अग्नि में न डाले, और न इस में पाओं तपाए ॥ ४ ॥

नाश्नीयात्सन्धिवेलायां नगच्छेन्नापि संविशेत् ।
न चैव प्रलिखेद्भूमिं नात्मनोपहरेत्स्रजम् ॥ ५ ॥

सन्ध्या समय में न खाए, न चले, न सोवे, न भूमि को खुरचे, न आप माला उतारे ॥ ५ ॥

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत् ।
आमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥

जलों में मल, मूत्र, थूक, अपवित्र कपड़ा वा और कोई लहू और विषैली वस्तु न डाले ॥ ६ ॥

नैकः स्वपेच्छून्यगेहे श्रेयांसं न प्रबोधयेत् ।
नोदक्ययाभिभाषेत यज्ञं गच्छेन्नचावृतः ॥७॥

उजाड़ घर में अकेला न सोवे, अपने से बड़े को न जगावे, रजस्वला के साथ बात चीत न करे, यज्ञ में न जाए, जबकि वह चुना न गया हो ॥ ७ ॥

एकः स्वादु न भुञ्जीत स्वार्थमेको न चिन्तयेत् ॥
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात् ॥

अकेला स्वादिष्ट पदार्थ न खाय, अकेला

अपने काम की चिन्ता न करे, अकेला मार्ग न चले और अचानक सोते हुए को न जगावे ॥८॥

नाधार्मिके वसेद्ग्रामे नव्याधिबहुले भृशम् ।
नैकः प्रपद्येताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥९॥

उन गाओं में न रहे, जहां धर्म का पालन नहीं होता, न जहां बहुत बीमारी हो वहां रहे, अकेला यात्रा में न पड़े, न पर्वत में चिरकाल रहे ।९

नकुर्वीत वृथा चेष्टां न वार्यञ्जलिना पिबेत् ।
नोत्संगे भक्षयेद्भक्ष्यान्न जातु स्यात्कुतूहली ।१०

वृथा कोई काम न करे, अञ्जलि से पानी न पीए, गोद में रखकर भक्ष्य न खाए, न कभी कुतूहली हो ॥ १० ॥

न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत् ।
नास्फोटयेन्न च क्ष्वेडेन्न च रक्तो विरागयेत् ॥

न नाचे, न गावे, न बाजे बजावे न भुजा ठोंके, न उंगलियों के कड़ाके निकाले लहर में आया हुआ बोलियां न बोले ॥ ११ ॥

आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥

पाओं धोकर भोजन करे, पर गीले पाओं न सोवे, पाओं धोकर भोजन करता हुआ दीर्घ आयु को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः।
नस्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो न च स्नायाद्विना ततः ॥

इकट्ठे दोनों हाथों से अपना सिर न खुजावे, और भूठे हाथों से छुए नहीं, और न इसके बिना स्नान करे ॥ १३ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ॥१४

ब्राह्म मुहूर्त में जागे धर्म और अर्थ का विचार करे उन अर्थ से होनेवाले शरीर के क्लेशों को और वेद के तत्त्व अर्थ को भी विचारे ॥ १४ ॥

उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः ।
पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापरां चिरम् ॥

उठ कर आवश्यक मल मूत्र का त्याग करे फिर शौच करके एकाग्र हो पहली सन्ध्या में गायत्री जप करे और अपने समय पर दूसरी सन्ध्या में जप करे ॥ १५ ॥

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥१६॥

सच बोले प्रिय बोले अप्रिय सच न बोले, और प्रिय झूठ न बोले, यह सनातन धर्म है ॥१६ ॥

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत् ।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह ॥१७

शुभ को शुभ कहे, वा शुभ ही कहे सूखा वैर और झगड़ा किसी के साथ न करे ॥ १७ ॥

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥१८

आचार से दीर्घ आयु को पाता है आचार से भली सन्तान को आचार से अक्षय्य धन पाता है आचार कुलक्षण को नष्ट कर देता है ॥ १८ ॥

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च १९

दुराचारी पुरुष लोक में निन्दित सदा दुःख भागी रोगी और थोड़ी आयु वाला होता है १९

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥२०

जो पुरुष सदाचारी है, श्रद्धा से भरा हुआ

है; अथवा रहित है; वह सौ वर्ष जीता है; चाहे सारेही शुभ लक्षणों से शून्य भी हो ॥ २० ॥

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।
यद्यदात्मवशंतुस्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥ २१ ॥

जो २ कर्म पराधीन हैं; उस २ को प्रयत्न से छोड़े; और जो २ अपने आधीन हैं उस २ को यत्न से सेवन करे ॥ २१ ॥

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयो ।२२॥

क्योंकि पराधीन सब दुःख हैं, और अपने आधीन सब सुख है, यह संक्षेप से सुख और दुःख का लक्षण जाने ॥ २२ ॥

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोन्तरात्मनः ।
तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् ॥२३॥

जिस कर्म के करने से इसके अन्तरात्माको सन्तोष हो उसे प्रयत्न से करे, और उलटे को छोड़ देवे ॥ २३ ॥

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥२४॥

अधर्म किया हुआ इस लोक में गौ की तरह जल्दी अपना फल नहीं देता; पर धीरे २ बढ़ता हुआ करने वाले की जड़ों को काट देता है ॥ २४ ॥

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत् पुत्रेषु नप्तृषु ।
नत्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः ॥

यदि अपने में नहीं; तो पुत्रों में; यदि पुत्रों में भी नहीं;तो पोतोंमें फलता है। किया हुआ अधर्म करने वाले का कभी निष्फल नहीं होता ॥ २५ ॥

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ॥२६

अधर्म से पहले बढ़ता है, फिर भद्र देखता है, फिर शत्रुओं को जीतता है, अन्ततः जड़ समेत नष्ट होता है ॥ २६ ॥

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ७२

धर्मात्माओं के उस मार्गसे चले, जिससे इस के पितर चले हैं और जिससे इसके पितामह चले हैं, उससे चलता हुआ हानि नहीं उठाता है ॥२७॥

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ।
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ २८

जैसे पत्थर की नौका से पानी में तैरता हुआ नीचे डूबता है, वैसे मूर्ख देनेवाला और लेनेवाला दोनों नीचे डूबते हैं ॥ २८ ॥

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चन सर्पिषाम् ।२९

जल, अन्न, गौ, भूमि, वस्त्र, तिल सोना, घी इन सभी दानों में वेद का दान बढ़कर है ॥ २९ ॥

येन येन तु भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति ।
तत्तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः ॥३० ॥

जिस २ भावना से जो २ दान देता है, उस उसी भावना से वह आदर मान के साथ उस २ को प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

धर्मं शनैः संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः ।
परलोक सहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ३१ ॥

किसी भी जीव को पीड़ा न देता हुआ, परलोक की सहायता के लिये धीरे २ धर्म का संचय करे जैसे दीमक टीला बनाती है॥ ३१ ॥

नामुत्र हि सहायार्थंपिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्र दारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥३२

क्योंकि परलोक में सहायता के लिये न माता पिता, न पुत्र स्त्री, खड़े होते हैं, अकेला धर्म खड़ा होता है ॥ ३२ ॥

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेकएव च दुष्कृतम् ।३३।

अकेला जीव उत्पन्न होता है, अकेला ही मरता है, अकेला पुण्य को और अकेला पाप को भोगता है ॥ ३३ ॥

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ।३४

मरे शरीर को लकड़ी और ढेले के तुल्य भूमि पर फेंक कर बान्धव मुख मोड़कर चले जाते हैं, धर्म उसके पीछे जाता है ॥ ३४ ॥

यादृशोऽस्य भवेदात्मा यादृशं च चिकीर्षितम् ।
यथा चोपचरेद्देवं तथात्मानं निवेदयेत् ॥३५ ॥

जैसे इसका स्वरूप हो, और जिस प्रकार से वह इसकी सेवा कर सक्ता है, इस प्रकार वह आप अपने आप को समर्पण करे ॥ ३५ ॥

वाच्यर्थानियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः
तां तु यःस्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥३६॥

सब व्यवहार वाणी से सम्बंध रखते हैं, वाणी उनका मूल है, वाणी से उत्पन्न हुए हैं सो जो उस वाणी को चुराता है। वह मनुष्य हर एक वस्तु को चुराने वाला है ॥ ३६ ॥

---

## ईश विनय

(ले० श्री मुरारी लालजी शर्मा दिल्ली)

प्रभु मम हृदय कीजे पुनीत ॥ टेक ॥

सात्विक मनसे प्रभु आपके, हो चरणों में प्रीत ।
काम क्रोध अरु लोभ स्वादपर निश्चय पांऊ जीत ॥ १ ॥
द्वेष कपट पर निन्दा त्यागूं जानूं सबको मीत ।
सदाचार और विश्व प्रेमकी अपनाऊं मैं रीत ॥ २ ॥
अभय भाव से जगमें विचरूं, कभी न होऊं भयभीत ।
आत्मिक बलके पवित्र भावों पर डालूं जीवन भीत ॥ ३ ॥

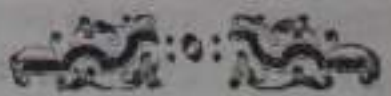

# सत्योपदेश।

हे सच्चिदानंद स्वरूप, सर्वशक्तिमान, सर्व हृदयान्तरगत, सर्व व्यापक प्रभो ! यदि मैं तुझको यहां आत्मा में नहीं पासका तो किस जगह पा सकूंगा।

सृष्टि के सकल पदार्थ एक विशेष आदर्श की ओर जाते हुवे दीखते हैं।

मनुष्य जीवन के प्रति विभाग में हम को प्रतीत होता है कि हरएक क्रिया किसी विशेष आदर्श की ओर है।

जड़ पदार्थ ऐसी क्रिया नहीं कर सकते अतः हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि यह सकल पदार्थ किसी चैतन्य अधिष्ठात्री शक्ति की आज्ञानुसार विचरते हैं।

ब्रह्माण्ड के सकल पदार्थ उच्च स्वर से पुकार रहे हैं कि परमात्मा विद्यमान है।

संसार की सुन्दर वस्तुएं एक विशेष सौन्दर्य की सत्ता की साक्षी हैं।

प्रत्येक मधुर वस्तु अत्युत्तम मधु को दर्शाती है।

हरेक पवित्रता उस पवित्रता के स्रोत को दर्शाती है।

जो अन्य पदार्थों के सौंदर्य और उत्तमता का स्रोत है उसी को परमात्मा कहते हैं।

ईश्वर परिपूर्ण है वह अनन्त है, वह ज्ञान स्वरूप है। उस का ज्ञान अनुमान नहीं बरञ्च प्रत्यक्ष है।

ज्ञान के अतिरिक्त उस में कृति भी है।

इस कृति के कारण वह अपनी भलाई को दूसरों तक पहुंचता है और मनुष्यों को अपने स्वरूप में गढ़ता है।

भगवान में ज्ञान और कृति ही नहीं बरञ्च प्रेम भी है। प्रेमकी तुलना इसीसे हो सकती है कि प्रेम के विषय में कितनी नेकी है।

वह प्रेम स्वरूप है।

जो कुछ हम अनुभव करते हैं जो कुछ हमारे दृष्टि गोचर होता है वह इसी ईश्वर का विकाश है जो आप छिपा हुवा है।

सारे पदार्थ भगवान के शब्द हैं और बोलते हैं।

प्रत्येक वस्तु ईश्वर से परिपूर्ण है।

जब कभी हम किसी वस्तु से प्यार करते हैं तो उस के आभ्यन्तर वास करने वाले भगवान के कारण से करते हैं।

प्यासा पुरुष जल की अभिलाषा इस लिये करता है कि जल में भगवान् निवास करते हैं।

मनुष्य को बड़े से बड़ा आनन्द भले कामों के चिन्तन से होता है

भगवान केवल उन से प्यार करता है जो अन्याय से घृणा करते हैं।

मूर्ख एक ही अध्यापक से सीखते हैं और वह है विपत्ति।

वह पुरुष जिस से सारे डरते हैं सब से डरता है

मेरे लिये कर्तव्य वह है जो मुझे भाता है।

एक काम का करना ही पर्याप्त नहीं परन्तु आवश्यक है कि हम इसे सोच विचार कर करें।

सदाचारी जीवन में सब से बड़ा धर्म यह है कि मनुष्य अपने आपे को जाने।

सच्ची तपस्या इन्द्रिय संयम और दम है।

हमारे अन्दर देवासुर संग्राम होरहा है। असुर प्रत्येक की अवस्था में विशेष दुर्लभ अंश को ढूंढने

हैं और उस पर प्रहार करते हैं।

एक पुरुष की अवस्था में यह अंश काम दूसरे की अवस्था में क्रोध और तीसरे की अवस्था में कोई और अंश होता है।

जो मनुष्य अपने आप को नहीं जानता वह अपने दुर्बल अंश को भी नहीं जानता और इन्द्रियों को वश में रखने के अयोग्य है।

मनुष्य का सारा जीवन चेष्टा का प्रकाश है।

जब कभी हम चेष्टा करते हैं तो किसी त्रुटि को दूर करने के लिए करते हैं।

त्रुटि दुःखों का मूल है।

जब एक न्यूनता दूर होती है तो स्वाभाविक एक नई न्यूनता उत्पन्न हो जाती है।

विषयों की तृप्ति से अपने आप को शान्त करना ऐसा ही सम्भव है जैसा घृत से छींटों से अग्नि को बुझाना।

निर्वाण जीवन का आदर्श है।

जीवन का उद्देश्य जीवन दीर्घ करना नहीं वरंच जीवन के बन्धन से मुक्त होना है।

जगत् में सुख से दुःख अधिक है और ज्यों २ समय व्यतीत होता जाता है दुःख बढ़ता जाता है।

यदि हम कब्रों को ठोकर लगावें और मुर्दों से पूछें कि वह जीवित होना चाहते हैं या नहीं तो वह शिर हिला देंगे।

तुम इस प्रकार काम करो कि अपने काम के नियमको सर्वगत नियम बनाने की चेष्टा कर सको।

हमारे कामों का उद्देश्य किसी और उद्देश्य का साधन होने के स्थान में स्वयं साध्य होना चाहिए।

इस तरह काम करो कि मनुष्यत्व तुम्हारी अपनी अवस्था में या किसी और की अवस्था में साधन की न्याईं बर्ताव में न लाया जाय वरंच अंतिम उद्देश्य समझा जाय।

जो कुछ संसारमें होता है वह भावीके आधीन है। ऐसी अवस्था में हम क्यों चिंता करें।

अडोल चित्त होना, सिर आई को शांति से सहना, भगवान के साथ प्रेम करना यही जीवन का मुख्योद्देश है।

ईश्वर की उपासना जन्म और प्रकृति की उपासना मृत्यु है।

विद्या जीवन और अविद्या मृत्यु है।
सत्य जीवन और मूठ मृत्यु है।
धर्म जीवन और अधर्म मृत्यु है।
परोपकार जीवन और स्वार्थ मृत्यु है।
पुरुषार्थ जीवन और आलस्य मृत्यु है।
ब्रह्मचर्य्य जीवन और व्यभिचार मृत्यु है।
सादापन जीवन और सजावट मृत्यु है।
एकता जीवन और विरोध मृत्यु है।
मित्रता जीवन और शत्रुता मृत्यु है।
वीरता जीवन और कायरता मृत्यु है।
सत्संग जीवन और कुसंग मृत्यु है।
संतोष जीवन और लोभ मृत्यु है।
अहिंसा जीवन और हिंसा मृत्यु है।
कृतज्ञता जीवन कृतघ्नता मृत्यु है।

प्रत्येक मनुष्य जीवन से प्रेम रखता है और मौत से डरता है, इस कारण उपरोक्त मौत के साधनों से घृणा करनी उचित है।

एक परमात्मा को सर्वोपरि इष्ट देव मानना, उसी की पूजा करना, सम्पूर्ण कर्म और जीवन का आधार समझना, उस के पवित्र नाम का गुप्त जप

करना और उस पर पूर्ण विश्वास रखना चाहिये।

ईश्वर, जीव और माया शांत अनादि हैं और ब्रह्म अनंत अनादि है।

मुक्ति अनन्त और अपार है। त्रिविधा दुःख की अत्यन्त निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति रूप है।

कर्मों के अनुसार उन्नति पूर्वक शुभाशुभ जन्म मानना चाहियें।

अवतार, मूर्तिपूजा, तीर्थ, श्राद्ध आदि पुरानी बातों को जो बुद्धि के अनुकूल हों मानना चाहिये।

वेद शास्त्र आदि सर्व प्रमाण ग्रन्थों की अच्छी बातें को जो बुद्धि के अनुकूल हों मानना चाहिये।

सर्व विद्या और समस्त पुस्तकों के पढ़ने में मनुष्य मात्र का अधिकार होना चाहिये।

एक मनुष्य जाति है और जैसा करता है वैसा बनता है जन्म से कोई अच्छा बुरा नहीं होता। इस में जाति पांति ऊंच नींच का कोई भेद न होना चाहिये।

अध्यात्म विद्या में गीता उपनिषद् का नित्य पाठ करना चाहिये।

आलस्य छोड़ कर आजन्म विद्याध्यन करना चाहिये।

सब काम समय पर करने चाहियें।

बार।बार संध्या करनी चाहिए।

ईश्वर को और मौत को याद रखना चाहिए।

भगवान के दर्शन करने के लिए योगाभ्यास करना चाहिए।

देश।नरेश।महेश की भक्ति करनी चाहिए।

सब मतों को, उनकी पुस्तकों को, उनके अवतार तथा पीर पैगम्बरों को और अन्य देशोंके मनुष्यों को समान दृष्टिसे देखना चाहिए। सबको अपना आपा समझना चाहिए। और परस्पर का भेद झूटा समझना चाहिए।

प्यारा, हितकर, सच्चा और मधुर भाषण करना चाहिए।

अपने घर में आये हुवे अतिथि का यथायोग्य पूजन करना चाहिए।

आपत्ति आने पर आनन्द में मग्न रहना चाहिए।

अपने साथ में की हुई दूसरे की बुराई को और दूसरे के साथ में किये हुवे अपने गुण को भूल जाना चाहिए।

सम्पूर्ण कर्मों का फल परमात्मा को अर्पण करना चाहिए।

प्रारब्ध से पुरुषार्थ को बड़ा समझना चाहिए।

बलवान की अपेक्षा निर्बलों को विशेष सुभीता देना चाहिए।

मन वाणी और कर्म से सबको सुख पहुंचाना चाहिए।

गौ रक्षा के लिये उत्तम नसल उत्पन्न करके सुधार बनाना चाहिये और गोचर भूमि छुड़वाना चाहिये।

विषयों के आधीन न होना चाहिये। अधिक उपाधि नहीं बढ़ानी चाहिये। सारासार का विचार करते रहना चाहिये। साधु सज्जनों के सत्संग में जाना चाहिये। अधिक संतान न बढ़ानी चाहिये।

जिसे अपने लिये चाहे उसे दूसरे के लिये करना चाहिये।

हर एक काम सब की भलाई के लिये पवित्र आकांक्षा से करना चाहिये।

दूसरों की बड़ाई सुन कर प्रसन्न होना चाहिये

पड़ोसी का मान आदर करना चाहिये ।

स्नान पान प्रेम और शुद्धताई के साथ मनुष्य मात्र का कर लेना चाहिये ।

दो बार हांडी का और एक बार चूल्हे का पका खाना चाहिये ।

मीठा भोजन दूसरे को खिला कर खाना चाहिये ।

मोटा खाना और मोटा पहरना चाहिये ।

बहुत भूख लगे तब खाना चाहिये और बहुत नींद आवे तब सोना चाहिये ।

सात्विक पदार्थ जो बुद्धि इत्यादि को बढ़ावें भोजन करने चाहियें ।

विवाह स्वयंवर की रीति से जाति पांति के विचार बिना लड़का लड़की के परस्पर प्रेम होने पर उन की इच्छानुसार होना चाहिये ।

एक पुरुष को एक ही स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये आवश्यक्ता होने पर दूसरी से भी । विवाह सम्बन्ध में जो पुरुष को अधिकार हैं वही स्त्री को भी होने चाहियें ।

हर विषय में स्त्री पुरुषों के समानाधिकार होने चाहियें ।

स्त्रियों का आदर मान करना चाहिये और उन्हें प्रणाम करनी चाहिये । पैर की जूती समझने की अपेक्षा सिर का मुकुट समझना चाहिये । इस के स्मरणार्थ "गौरी शंकर सीताराम राधे श्याम श्यामाश्याम" इस मन्त्र का जप करना चाहिये ।

स्त्री को पातिव्रत धर्म और पुरुष को नारिव्रत धर्म पालन करना चाहिये ।

स्त्री पुरुषों को अनुगामी होना चाहिये ।

अच्छे २ लाभ दायक पुण्य उत्तम वृक्ष लगाने चाहियें । वृक्षों तथा औषधियों की नसल बढ़ा कर प्रभूत फल देने वाले बनाने चाहियें ।

तालाब कूंवा मन्दिर प्याऊ आदि बनवाने चाहियें ।

ब्याज छोड़ा लेना चाहिये ।

देश और धर्म के लाभ को विचारते हुये व्यापार करना चाहिये ।

दश दश पांच २ ग्रामों के मध्यम में एक एक आश्रम बनाना चाहिये और वहां ही जंगल में लड़के लड़कियों की पाठशाला होनी चाहिये ।

कभी २ नाचना और गाना भी चाहिये

वृद्ध मां बाप की सेवा करनी चाहिये ।

मुकुट दार टोपी तथा टोप पहनना चाहिये ।

बालकों को खेल के द्वारा विद्या सिखानी चाहिये ।

सब को बांसुरी बजानी चाहिये ।

ब्रह्म मुहूर्त्त में उठना चाहिये ।

किसी काम को अकेले ही न सोच कर दूसरे की सलाह करनी चाहिये ।

अपने पापों को प्रकट कर शुभ कर्मों को छिपाना चाहिये ।

ऋण से मुक्त रहना चाहिये ।

जैसे तुरत की ब्याई गौ अपने बच्छे से प्यार करती है वैसे ही सब से वर्त्तना चाहिये ।

अपने लाभ में से दशवां भाग पुण्य करना चाहिये ।

रात को मुंह ढवाह कर सोना चाहिये ।

रात को दक्षिण की ओर, दिन में उत्तर की ओर, और दोनों सन्ध्याओं में उत्तर को मुख करके मलमूत्र का विसर्जन करना चाहिये ।

एक हाथ से शिर खुजाना चाहिये।

मनुष्य को अपनी स्वतन्त्रता से ऐसा धर्म स्वीकार करना चाहिये। जिस में प्रीति उत्साह और निर्भयता होवे।

थोड़ा बोलना चाहिए और कभी २ मौन भी रखना चाहिए।

धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह करना चाहिए, सुखियों से मित्रता, दुःखियों पर दया, साधुवों के साथ मुदिता, और दुर्जनों के साथ उपेक्षा करनी चाहिए।

## भजन १

बंदौ श्री हरिपद सुख दाई ॥ टेक ॥
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै।
अंधरे को सब कुछ दरशाई ॥ १ ॥
बहिरो सुने गूंग पुनि बोलै।
रंक चलै शिर छत्र धराई ॥ २ ॥
सूरदास स्वामी करुणामय।
बारम्बार नमो तिहिं पाई ॥ ३ ॥

## २

बंदौ मैं चरण सरोज तिहारे ॥ टेक ॥
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन,
ललित त्रिभंग प्राणपति प्यारे।
जे पद पद्म सदा शिव को धन,
सिन्धु सुता उर से नहिं टारे ॥
से पद पद्म नात रिस त्रासत,
मन वच क्रम प्रह्लाद सम्हारे।
जे पद पद्म फिरत वृन्दावन,
अहि शिर धरि अगणित रिपु मारे।
जे पद पद्म परस व्रज युवति,
सबंस दे सुत सदन बिसारे।
जे पद पद्म लोकत्रय पावन,
सुरसरि दरश कटत अघ भारे।
जे पद पद्म परसि ऋषि पत्नी,
नृप अरु व्याध अमित सब तारे।
जे पद पद्म फिरत पाण्डव गृह,
दूत भये सब काज संवारे।
ते पद पंकज सूरदास प्रभु,
त्रिविधताप दुःख हरण हमारे ॥

## ३

बंशी वारे मोरी गली आजारे ॥ टेक ॥
तेरे बिन देखे कल ना परत है,
दुरस मुखड़ा दिखलाजा रे ॥ १ ॥
रैन दिना मोहिं ध्यान तिहारो,
बंशी की टेर सुनाजा रे ॥ २ ॥
चरणदास सुखदेव पियारे,
मेरो हि माखन खाजारे ॥ ३ ॥

## ४

गारी मत दीजो मो गरीबनी को जायो है ॥ टेक ॥
तेरो जो बिगारयो सो तो मोसों कही आन बीर,
मैं तो काहू बात को नहीं तरसायो है ॥ १ ॥
दधि की मटुकिया भरी आंगना में आनि धरी,
तोल तोल लीजो बीर जेतो जाको सायो है ॥ २ ॥
सूरदास प्रभु प्यारे नेक हू न हूजे न्यारे,
कान्हारा सो पूत मैंने बड़े पुण्य पायो है ॥ ३ ॥

## ५

तेरो मुख नीको कि मेरो राधा प्यारी ॥ टेक ॥
दर्पण हाथ लिये नंदनंदन,
सांची कहो रूप भानु दुलारी ॥ १ ॥

हम का कहैं तुम ही क्यों ना देखो,
मैं गोरी तुम श्याम बिहारी ॥ २ ॥
हमरो बदन ज्यों चंदा की उजारी,
तुमरो बदन जैसे रैन अंधारी ॥ ३ ॥
तिहारे शीश पर मुकुट विराजे,
हमरे शीश पर तुम गिरिधारी ॥ ४ ॥
चंद्र सखी भज बाल कृष्ण छवि,
दोउ ओर प्रीति बढ़ी अति भारी ॥ ५ ॥

६

कान्हा कोकड़ली ना मारो म्हारी फूटे गागड़ली । टेक
तू तो कान्हा घर में ठाकड़ मैं भी ठाकड़ली ।
आकड़ आकड़ कान्हो बोले मैं भी आकड़ली ॥ १ ॥
कान्हो ओढ़ै कारी कामर हाथ में लाकड़ली ।
नो लाख धेनु नन्द बाबा के एक न बाखड़ली ॥ २ ॥
माखन माखन आपन खायो रड़ गई छाछड़ली ।
जाय पुकारूं कंस राजा के मारे थापड़ली ॥ ३ ॥
वृन्दावन में रास रच्यो है मोर की पांखड़ली ।
सखी के स्वामी सांवरिया दूध में सांकड़ली ॥ ४ ॥

७

स्वमसि मम भूषणं त्वमसि मम जीवनं ।
स्वमसि मम भव जलधि रत्नम् ॥

हे राधे ! आप मेरे प्राण हो, आप मेरा भूषण हो और आप मेरा संसार रूप समुद्र में रत्न हो ।

स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं ।
देहि पद पल्लवमुदारम् ॥

हे राधे ! आप कामदेव के विष के नाशक, मेरे शिर के भूषण मनोहर अपने चरण कमल को मेरे शिर पर रक्खो ।

दोहाः-राधे मेरी लाड़ली मेरी ओर तू देख ।
मैं तोहे राखूं नयन में काजर की सी रेख ॥

मेरी तो जीवन राधा बिन देखे नहीं चैन ॥ टेक ॥
मोसे तो कछु चूक परी ना,
कैसे रूठी सुख दैन ॥ १ ॥
पैय्यां परूं मैं तोरे ललिता ( तोरे विशाखा )
तुम जय्यो प्यारी लैन ॥ २ ॥
धीरज प्यारी जूके देखे ( श्री राधा जूके देखे ),
शीतल होंगे मेरे नैन ॥ ३ ॥

८

म्यारी करो प्रभु अपनी गैयां ॥ टेक ॥
नाहिन बनत लाल हम तुम सों,
कहा भयो दश गैयां अधिकैयां ॥ १ ॥
ना हम चाकर नंद बबा के,
ना तुम हमरे नाथ गुसैयां ॥ २ ॥
आपन रहत नींद को मातो,
हम चरावत तेरी बन बन गैयां ॥ ३ ॥
कबहूं जाय कदम चढ़ बैठे,
हम गैयन संग लगत पठैयां ॥ ४ ॥
मानी हार सूरके प्रभु ने,
अब नहि जाऊं मोहि नंद की दुहैयां ॥ ५ ॥

९

तू कहा जानै री गूजर दधि की बेचन हार ॥ टेक ॥
कौन पिता को मात हमारे,
जन्म अजन्म रूप रंग धारे ॥

भुवके भार उतारन कारन,
लीन मनुज अवतार ॥ १ ॥
मेरी माया जगत भुलानो,
मेरो कह्यो सत्य कर मानो ।
गावत वेद पुराण भागवत,
यश गावत श्रुति चार ॥ २ ॥
जो मेरो निज दास कहावे,
रसिक प्रीतम निज भक्ति पावे ।
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद;
शेष न पावत पार ॥ ३ ॥

## १०

भूल बिसर मत जना कन्हा मेरी ओर निभाना जी टेक
हमरी तुमरी लगन लगी है;
नित प्रति आना जाना जी ।
मन भावै सो कहे जगत सब,
नेक नहीं शरमाना जी ॥
घट घट वासी अन्तर्यामी,
प्रेम का पन्थ पिछाना जी ।
जो तू मेरो नाम न जाने,
मेरो नाम दिवाना जी ॥
सूरज सोही पौर हमारी,
चन्दन चौक निशाना जी ।
हमरे अङ्गना तुलसी का बिरवा,
जाके हरे हरे पाना जी ॥
जो कान्हा मेरो गांम न जाने,
मेरो गांम बरसाना जी ।
कै तो ठाकुर दर्शन दीजो,
ना तर लीजो प्राणा जी ॥
जब से सुनी भनक मुरली की,
तब से जिय घबराना जी ।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
लगी प्रीत के बाना जी ॥

## ११

सत मत छोड़ियो जी जग में थोड़ी सी जिन्दगानी टेक

सत नहीं छोड़ा प्रहलाद भक्त ने हरिश्चन्द्र से दानी ।
सत के कारज बिके वे तीनो, भरयो नीच घर पानी ॥
सत नहीं छोड़ा बली राजा ने, कहा बिप्र का माना ।
तीन पैंड धरती दे राजन, नाप लई रजधानी ॥
सत नहीं छोड़ा द्रोपदी ने, कहा पति का माना ।
अपयश पाया मान घटाया दुःशासन अभिमानी ॥
जो जो रहते सत मारग में कहते वेद बखानी ।
वाही ने कछु कर दिखलायो, नन्हू मल की बानी ॥

## होली १२

नेह लगो मेरो श्याम सुन्दर सौं ॥ टेक ॥
आई बसन्त सभी बन फूले,खेतन फूली सरसौं ।
मैं पीरी भई पिया के विरह में निकसत प्राण उदरसौं ।
कहो जाय बनसीधर सौं ॥ १ ॥
फागन में सब होरी खेलें, अपने अपने घरसौं ।
पियाके वियोग जोगन हो निकसी धूर उड़ावत कर सौं ।
चली मथुरा की डगर सौं ॥ २ ॥
ऊधो जाय द्वारिका में कहियो इतनी अरज मोरी हरिसौं ।
विरह विथा सौं जिवरा डरत है जबसे गये हरि घरसौं ।
दरश देखन को मैं तरसौं ॥ ३ ॥
सूर श्याम मेरी इतनी अरज है कृपा सिंधु गिरधर सौं ।
नदिया गहरी नाव पुरानी अबके उभारो सागर सौं ।
अरज मोरी राधावर सौं ॥ ४ ॥

## १३

सखी नंदलाल आवन नहिं पावैं ॥ टेक ॥
भीतर चरन धरन मत दीजो चाहे जितनो ललचावैं ॥१
ऐसों को विश्वास कहां री कपट की बात बनावैं ॥२
नारायण इक मेरे भवन बिन अन्त चहैं जहां जावैं ॥३

## १४

मोहि मत रोकै तू एरी ब्रज नागरी ॥ टेक॥
रूप की निधान है तू सभी गुण खान है तू।
तेरे सम कौन आज मेरो बड़ो भागरी ॥ १ ॥
कहै तो मैं सुख करूं बांसुरी में राग भरूं।
कान्हरो केदारो भैरव सोरठ विहागरी ॥ २ ॥
तू तो सदा उपकारी हितहू की करन हारी।
आज नारायण मोसों क्यों राखे लागरी ॥ ३ ॥

## १५

हमसे मत बोलै सांवरिया तू मतवारो रे ॥ टेक ॥
हट मोहन हटको नहिं आवै नट खट जात अहीर कहावै,
जाय कहूं बसुदा सों हरको बारो रे ॥ १ ॥
कुबजा सौत भली मन भावै हमैं बावम्बर जोग पठावै।
छोड़ दियो हम नाहक जियरा जारोरे ॥२॥

## होली १६

पाती मधुबन से आई ॥ टेक ॥
ऊधो हाथ श्याम लिख पठई,
तुम सुनो हो मोरी माई ॥
अपने अपने घर से दौरीं,
लै पाती उर लाई ॥
नयन नीर निरखि नहीं खण्डित,
प्रेम की विथा बुझाई ॥
कहा करूं सूनो यह गोकुल,
हरि बिन कछु न सुहाई ॥
सूरदास प्रभु कौन चूकते,
श्याम सुरति बिसराई ॥

## होली १७

हरि को नाचन सिखवत प्यारी ॥ टेक ॥
जैसो ही सुभग बन्यो वृंदावन,
तैसी शरद उज्यारी ॥
मान गुमान लकुट लिये ठाड़ी,
डरपत कुञ्ज बिहारी ॥
थेई थेई करत लाल मन मोहन,
उरप तुरप गति न्यारी ॥
बंशी वट यमुना तट कुञ्जन,
रास रच्यो गिरधारी ॥
कोऊ मृदंग कोऊ बीन बजावत,
कोई हंसत दे तारी ॥
छवि सौं गावत खड़ी नचावत,
रोम रोम बलिहारी ॥
देखि देखि ब्रह्मादिक नारद,
अचरज सोच विचारी ॥
व्यास स्वामिनी सो छवि निरखत,
रीझ देत कर तारी ॥

## होली १८

आज बनवारी बन्यो है मुरारी ॥ टेक ॥
कुञ्ज बिहारी गिरवर धारी,
संग सोहै राधा प्यारी ॥
दोनों मिल कर निरत करत हैं,
कान्हा वृष भानु दुलारी ॥
मोर मुकुट चन्दन की खोर सजै,
अलकें घूंघर वारी ॥
टेढ़ी चितवन नाक में मोती,
मुरली अधर उचारी ॥
देह की दशा बिसारी दयासखी,
पायन परि बलिहारी ॥

---

स्थानाभाव के कारण संसार समाचार नहीं जाता है

## निम्न लिखित महानुभावों ने भक्ति के संरक्षक बन कर भक्ति को अपनाने की कृपा की है।

१. राव साहब श्री बल्लभ प्रसाद जी रईस आनरेरी मजिस्ट्रेट गुलज़ारबाग़, पटना १०१)
२. राव बहादुर ला० बनारसीदास जी रईस, मिल ओनर अम्बाला १०१)
३. श्रीमान् भाई नारायण सिंह जी हीरामण्डी लाहौर १०१)
४. राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा ५१)
५. श्रीमान् राय भाई गनेशीलाल जी आरमी मिनिस्टर अलवर राज्य ५१)
६. राव श्रीराम रईस नांगल २५)
७. म० शोभाराम जी डूंगरवास २५)
८. चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी २५)
९. राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास २५)
१०. बा० स्वरूपचन्ददास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्ज़ पटना यू० पी०। २५)
११. श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी ओ० बी० ई० जागीरदार रामपुरा रेवाड़ी। २५)

### सहायक।

१. पं० मूलचन्द जी प्रेसीडेंट म्यूनिसिपल कमेटी पलवल। ११)
२. श्रीमती उमरावकौर धर्मपत्नी राव जगमालसिंह जी रईस नांगल ११)
३. महाशय शादीराम जी मक्लापुर, रेवाड़ी। ५)
४. बा० ब्रजलाल जी शिरकेदार प्राईवेट सेक्रेटरी आफिस संगरूर, नींद। ५)
५. राव बलवन्तसिंह जी मु० जैनपुर तहसील रेवाड़ी। ५)
६. श्रीमती सूरज देवी धर्म पत्नी चौ० ओंकारसिंह जी शिशन जज अलीगढ़। ५)
७. चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपूताना ५)
८. श्रीमान् पं० जयराम जी शर्मा 'गौड़' क्लार्क इलाहाबाद बैंक देहली। ५)
९. ला० बनारसी दास जी, अकाउण्टेण्ट हजूरी, संगरूर। ५)
१०. ला० भगवान दास जी, एडिट क्लार्क सेक्रेटरी इजलास खास आफिस संगरूर ५)

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति मेरु" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।

# बिना गुरु के सिद्धान्त कौमुदी ।

## भाषाफक्किका प्रकाश ॥

इस पुस्तक में बहुत ही सरल भाषा में तथा प्रश्नोत्तर के रूप में सिद्धान्त कौमुदी की गूढ़ फक्किकाओं को समझाया गया है। विद्यार्थियों के बड़े लाभ की पुस्तक है इस से विद्यार्थी तक पढ़ कर स्वयं सिद्धान्त कौमुदी पढ़ सकते हैं। मूल्य केवल ॥)

## ज्ञानधर्मोपदेश ।

इस छोटी सी पुस्तक में वेद शास्त्र तथा धर्म का सार संग्रहीत है और वेदान्त की उत्तम कविताओं का संग्रह है। मूल्य -)॥।

## वेदोपनिषत् ।

इस पुस्तक में ईश, कठ, केन, मुण्डक, और माण्डूक्यादि उपनिषदों तथा वेदों के उत्तम २ मन्त्रों का अर्थ सहित संग्रह है। मूल्य।-)

## अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला ।

इस पुस्तक में गीता और उपनिषदों से १०८ बहुत ही उत्तम श्लोकों का संग्रह है। यह नित्य पाठ करने की पुस्तक है। मूल्य -)।

## भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता ।

इस पुस्तक में प्रथम मूल है तत्पश्चात् अन्वय तथा सरल संस्कृत में प्रत्येक मूल के पर्याय फिर सरल हिन्दी भाषानुवाद है। यह गीता के जिज्ञासु तथा कथक्कड़ों के बहुत ही लाभ की पुस्तक है पृष्ठ संख्या ४२६ होने पर भी हमने भक्त जनों के हितार्थ मूल्य केवल ॥=) ही रक्खा है शीघ्रता कीजिये केवल १००० ही प्रतियाँ हैं जिन के अति शीघ्र ही निकल जाने की आशा है।

## सत्य शब्द संग्रह ।

इस पुस्तक में महात्माओं की उत्तम २ वाणियों का संग्रह है। वेदान्त विषय की उत्तम कोटि की कवितायें कवित्त तथा सवैये हैं। अन्त में विचार सागर है। यह भक्त जनों के नित्य पाठ की बड़ी ही उत्तम पुस्तक है मूल्य।=)